लेखक की प्रमुख रचनाएँ

उपन्यास

बोरीवली से बोरीबन्दर तक (पुरस्कृत)	3.50
कबूतरखाना	2.50
हौलदार	6.00
चिट्ठीरसैन	4.50
किस्सा नर्मदाबेन, गंगूबाई	2.50
मुख-सरोवर के हंस	4.00
चौथी मुट्ठी	3.00
एक मूठ सरसों	—
सातवाँ समुन्दर	—
बारूद और बचुली	—

एकांकी

खांसी को फांसी	2.00

अवतार-गाथा

बेला हुई अबेर	3.00

कहानी

मेरी तैंतीस कहानियाँ	6.00

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-6

मुख सरोवर के हंस
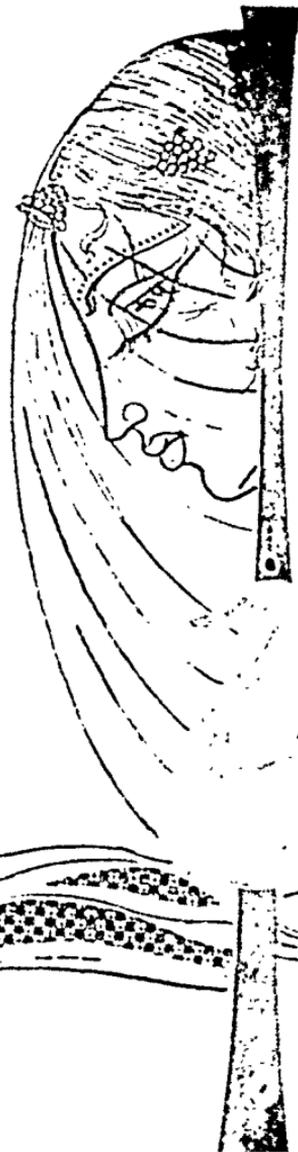
शैलेश मटियानी

कथा-सार

गढ़ी चम्पावत के छत्रधारी खड्गधारी राजा कालीचन्द ने आठवाँ विवाह किया था। सन्तान-मुख देखने, पितर-ऋण उतारने के लिए। आठवीं रानी रुपाली, डोटी देश की राजकुमारी, कुमाऊँ-पछाऊँ की राजधानी गढ़ी चम्पावत नगरी में आई। अप्रतिम-रूप, उद्दाम-यौवन और असाधारण मानी मन लिए।

इधर कुमाऊँ के बाईस सूर्य-से बफौलबन्धु भी, महरगाँव की एक लली दूधकेला से शादी करके, गढ़ी चम्पावत नगरी लौटे। उन्होंने अपने पराक्रम से पंचनाम देवों के मन्त्र-पुत्र मल्लों को पराभूत कर, गढ़ी चम्पावत नगरी के राज-द्वारों का चौकीदार बनाकर रखा।

—बाईस भाई बफौलों के रूप-शौर्य को देखते ही, आठवीं रानी रुपाली का चपल मन कामुकता की चंचल-धार में, तैरना न जानने वाली मछली-सा, बह गया। वह बाईस भाई बफौलों की बाईस गद्दों-तकियों वाली सेज की एक सोने वाली बनने, बाईस मृदंगों की एक थाप, बाईस स्वरों की एक रागिनी बनने—कामातुर हो, बफौलों के महल में गई।

सत् रह जाए, बफौलीकोट की धरती-पार्वती का। बफौलों ने उससे कहा—"माँ हो, रक्त-धार नहीं, दूध-धार दो।" और, पुण्य सहेज लिया, पाप ठुकरा दिया।

चोट-खाई नागिन-सी रुपाली रानी लौटी। बफौलों के आँगन में बाईस मुक्के छाती में मारे, बाईस उल्टी हथेलियाँ माथे से लगा गई—"बफौलों का वंश-बीज-नाश करूँगी, तभी अन्न-दाना, घूँट-पानी ग्रहण

करूँगी !"

और उसने यही किया ।

इसी कथा-क्रम में महारानी भद्रा आती हैं, कि उनका नाम आने से आँगन और प्रफुल्ल, दीपक और उजला होता है । वह रानी रुपाली और राजा कालीचन्द की खातिर गढ़ी चम्पावत नगरी को नमस्कार कर गईं, जागनाथ को प्रस्थान कर गईं, कि अन्त में गढ़ी चम्पावत नगरी को राजवंशी-कुँवर उन्हीं की कोख से मिला, कि सुलक्षणा-पतिव्रता के पुण्य देर से फलते हैं, कि टके की कुतिया तो हर चौथे महीने व्याती रहती है, मगर लाख की हथिनी सात साल में एक बच्चा देती है !

दीवान जोशी हो गए, कि कुमाऊँ-पछाऊँ एक घर था उनके लिए और वो उसके सबसे बूढ़े, सबसे भले अभिभावक । उनका नाम भी इस कथा को पावन-प्रसिद्ध बनाता है । सखी न्योली रुपाली रानी की, कि या घात हथौड़ी से मारी घात में, या उसकी घूंघट-ओट से किए इशारे-सी बात में होती है, कि शब्द केले-से होते हैं, अर्थ करेला होता है !

···और लली दूधकेला, बाईस भाई बफौलों की एक पत्नी, कि बाईस गाँठों वाली एक छड़ी, बाईस अश्वों की एक वल्गा । उससे यह कथा लाड़-प्यार और पवित्रता की त्रिवेणी में स्नान करती है, कि जब वह दुन महर की लली कुत्तरूवक किलकती है, तो उसके गुल-सरोवर के हंस निर्मल सरोवरों के हंसों की पाँत में गिने जाते हैं ! ···और जब चपला-चटुली रानी रुपाली ने उसके बाईस स्वामियों को डँस लिया, तो बफौली कोट में एक-मात्र अपनी बूढ़ी सास को बलिदान होती छोड़, बफौलों के प्रति-रूप को अपनी कोख में सहेजे, अपने मायके महरगाँव को चली गई ।···और, अन्त में, उसकी कोख से उपजे अजित बफौल ने मल्लों का भी नाश किया, और रुपाली रानी को भी उसका अभीष्ट दिया ।

बस, इतनी-सी कथा विस्तार से आंचलिक-रूप-शैली में, इस लोक-गाथापरक उपन्यास-कृति 'गुल-सरोवर के हंस' में ।

एहो, कथा के लाड़लो !

तुम्हारे घर के आँगन में दूधमुखी बालक रेशम-डोरी का पालना झूलता और तुम्हारे गांव के सरोवर में सूर्यमुखी-कमल खिलता रहे, कि चंचला, चपला, चुटुली रानी डोटियाली के द्वार का पहरुवा सो जाए, गोठ का बैल खो जाए, कि हट पापिनी, चार हाथ दूर, बारह पत्थर बाहर जा ! क्या दाँए सैन किए, क्या बाँए वचन बोली—

"सुनो हो, मेरे प्यारे, बाईस भाई बफौलो ! तुम्हारे नाम पर बाईस लटियाँ करूँगी, बाईस फुन्ने लगाऊँगी । बाईस रंग की चोली, बाईस पाट का घाघरा पहनूंगी । और, सुनो—द्वारिका के श्री कृष्ण ग्वाले की सोलह हजार रानियाँ थीं, सो वह अवतारी भगवान् कहलाया था । मुझ एक रानी डोटियाली के तुम बाईस भाई बफौल सेज के सोने वाले बनोगे, कि गढ़ी चम्पावत नगरी में एक अवतार मेरा भी कहलाएगा !···"

स्वर्गीया दादी-माँ को

मुख-सरोवर के हंस

परिभाषा और निवेदन

इस उपन्यास की रीढ़-अस्थि लोक-कथा का मुख्य सूत्र यों है, कि एक बार वेदमुखी विधाता ने एक त्रिया की रचना की। मोहिनी-सोहिनी-तिरिया की। बाद में, विष्णु, महेश और इन्द्रदेव की दीठ से बचाने के लिए, उसे काठ की तिरिया का रूप दे दिया। मगर उस काठ की तिरिया पर भी तीनों लोकों के स्वामी, गहरे समुंद्र की लहर-शय्या पर आसन लेने वाले भगवान् विष्णु तो मोहित हुए ही, ऊँचे हिमाल देश के गगनचुम्बी-शिखरों पर ताण्डव-नृत्य के नचय्या प्रलयंकर शंकर भी आसक्त हो गए। अन्त में ब्रह्मा से भी न रहा गया, कि संभवत:, इस काष्ठ-त्रिया में भी कोई ऐसी विशेषता अवश्य है, जिसने शंकर-विष्णु को तक सम्मोहित कर लिया···और उस काठ की तिरिया के लिए ब्रह्मा-विष्णु महेश तथा इन्द्र देव में संग्राम छिड़ गया।

तो इस छोटी-सी भूमिका में प्रस्तुत है, चंचला-चपला-चटुली तिरिया और मुख-सरोवर के हंसों की परिभाषा।

*   *   *

'तिरिया' की परिभाषा यों है, कि जब नारी की नयन-पुतली, अधर-णी और सिंदूर-स्यूनी[1]—ये तीनों निधियां थिर नहीं रह पातीं, तब ह चंचला-चपला और चटुली (पर-पुरुषांक-शायिनी) त्रिया कहलाती है।

यों, यही अन्तर 'नारी' और 'तिरिया' में है, कि नारी मातृत्व-ममत्व और तिरिया उद्दाम-अमर्यादित-यौवन की प्रतीक होती है।

एक नारी, एक तिरिया। शरीर-रचना, सौंदर्य-सौष्ठव एक। श्रुति एक, वाणी एक। एक माटी में पली ललियां, एक क्यारी में खिली कलियां। फिर भी दोनों समानान्तर रेखाएं। एक स्निग्ध-पारिवारिक-वातावरण की अभिलाषिणी। बालक के नाम पर पहला दूध-कटोरा भरने, पितरों-इष्टों के नाम पर पहला दीपक जलाने और पति-परमेश्वर के नाम पर पहला फूल चढ़ाने वाली, कि माता की कोख, पिता का गोत्र और गांव के मुखिया का मुख उजागर करने वाली।

और एक बावरी-बयार-सी उन्मुक्त अभिसारिका, कि लटी में फुन्ना अपने यार के नाम का गूंथना, चोली में रंग अपने यार के नाम का भरना, माथे पर बिंदिया यार के पसंद की लगानी, कि माता की कोख काली, पिता का नाम बदनाम। गांव का मुखिया, पट्टी का पटवारी, देश का राजा बदनाम।

पारिवारिक सुख-स्नेह की निर्मात्री-अधिष्ठात्री नारी, और नैतिकता की सीमा का अतिक्रमण तथा सुख-शांति के दायरे को संकुचित-विश्रृंखलित करने वाली तिरिया—नारी के इन दो रूपों का परिचय और प्रणयन इस लोकगाथापरक उपन्यास-कृति 'सुख-सरोवर के हंस' में।

'सुख-सरोवर के हंस' उपन्यास-कृति कुमाऊँ की प्रसिद्ध लोककथा 'अजित बफौल' पर आधृत है। यह लोक-कथा यहाँ की एक वीर-गाथा है,

---

1. सिंदूर-स्यूनी—सिंदूर-रेखा। मांग-भरी सिंदूर-रेखा स्थिर न रहने से तात्पर्य है, नारी का पति-परिवर्तन। सिंदूर-स्यूनी की अथिरता तिरिया का एक विशिष्ट लक्षण है।

जो कहीं-कहीं 'वैस भाई वफोल' के रूप में भी प्रचलित है। खेतों को गोड़ने-निराने के सामूहिक-श्रम-पर्व पर, यह कथा 'हुड़किया-बौल' में भी गाई जाती है, जिसमें लोक-गायक 'वैस भाई वफोला रे, वफोला भाई हो !' गाते हुए दोपुड़िया-हुड़क पर हाथ मार देता है। और लम्बी रातों की कथा-वेला रमौलिया वाईस भाई वफोलों की कथा को अपनी वाणी के वचन, अपने कण्ठ का स्वर देता है।

'मुख-सरोवर के हंस' उपन्यास-कृति के आन्तर-वाह्य, दोनों परिवेश आंचलिक हैं, अस्तु, इसकी भाषा, भाव-भूमि और कथन-शैली—तीनों आंचलिकता से अभिषिक्त हैं। लोक-कथात्मकता, कथन-शैली और शिल्पगत-आंचलिकता को सहज-सरस रूप में प्रस्तुत करने की, मैंने शक्ति-भर चेष्टा की है। भाषा, भावभूमि और कथन-शैली में व्याप्त-निहित आंचलिकता, ठेठ मौलिकता के बाद भी, पाठकों के लिए बोध-गम्य रहे, यह मेरा अभीष्ट रहा है। आंचलिक शब्दों को कम, पर आंचलिक (लोक-कथापरक) रूप-शैली को अधिक महत्त्व मैंने दिया है, तथा—आंचलिक शब्दों की ध्वनि-लय और उनके बोध-वैशिष्ठ्य के अनुरूप हिन्दी के शब्द देने, या उन्हें हिन्दी के साहित्य-कोश तक ले आने का प्रयास किया है। आशा है, रसमना पाठकों को इस कृति से लोकोत्तर आनन्द उपलब्ध होगा।

और, अब शेष रह गई 'मुख-सरोवर के हंसों' की बात। लली दूधकेला की भोर की किरन लगे से खिलने वाली कुसुम-कली-सी मुखाकृति को रजत-मेखों का आधार देने वाली दन्त-पाटी को ही इस लोकगाथापरक-कृति में सरोवर के श्वेत हंसों की पाँत में बिठाया गया है।

*   *   *

अन्त में, एक स्वीकृति।

लोक-कथा-गायन की परम्परा, तो मेरे पितरों (दिवंगत और जीवित

लोक-गायकों) की परम्परा है। मैं भी उसी परम्परा का पूत हूँ। किशोरावस्था तक वन का ग्वाला, खेतों का घसियारा बना रहा, तो अपने पितरों की इस परम्परा का यथावत्-पालन किया करता था—वन-खेतों में ठौर-ठौर लोक-कथाओं के छन्दों को अपना कंठ दिया करता था।

पितरों के आशीष फले हैं, लोक-कथा-गायन की भंडारिणी उत्तराखंडी-धरती-पार्वती के आँचल से आगे बढ़कर, हिन्दी-साहित्य की सरस्वती के आँचल तक आ गया हूँ।...और, 'सुख-सरोवर के हंस' के रूप में, अपने पितरों की परम्परा को एक नया मोड़ देने की सेवा का सुख पा सका हूँ। लोक-कथा-गायन-परम्परा के अधिष्ठाता तथा संरक्षक मेरे पितर रमौलिया और देवदास थे। लोक-कथा-लेखन का 'रमौलिया' बनने की ललक मेरी रही है। 'सुख-सरोवर के हंस' की रचना करके, अपनी इस ललक को पूरा करने का प्रयत्न मैंने किया है। और अपनी पितर-परिपाटी को आगे बढ़ाने की पूत-वृत्ति से ही मैंने यह कृति सिरजी है।

'सुख-सरोवर के हंस' उपन्यास को लिखने की अवधि में, मैंने अपने पितरों को प्रणाम सौंपे हैं, कि—एहो, मेरे रससिद्ध पितरो! तुम्हारा ही पूत हूँ, तुम्हारी ही परम्परा-परिपाटी को अपनी लेखनी सौंप रहा हूँ। दाहिने हो जाना, कि मेरी लेखनी के अक्षरों को अपने आशीर्वादों और रससिद्ध कंठों का सत् सौंप देना, कि मेरी इस अकिंचन्-कृति के माथे पर अपने आशीष-कुसुम रख देना, कि मैं तुम्हें अपनी श्रद्धा सौंपता हूँ!

कुमायूं-अंचल के रससिद्ध लोक-गायकों, कथाकारों की अपनी पितर-परम्परा को निवाहते हुए, इतर-जनों की आत्मीयता उनके, अपने और कुमाऊँ के लोक-साहित्य के प्रति बटोर सका, तो कृतित्व की यह सार्थकता मुझे सुख दे सकेगी।

1

अपनी ही सर्जना का प्रश्न-चिह्न

एक समय,

काल ने क्या करवट, पवन ने क्या दिशा बदली, कि पंचाचूली पर्वत-श्रेणी की गुरुस्थली में पंचनाम देवों की भाइयों की भेंट, केदार की यात्रा हुई।

पंचनाम देव कौन ?

गोल्ल, गंगनाथ, भोला, महाबली हरु और सैंमराजा।

काली कुमाऊँ, पाली पछाऊँ के पाँच लोक-देवता, कि पड़ती-संध्या, जगती-भार में जिनके नाम की पहली धूप-बाती होती है, कि पहली फूल-पाती चढ़ती है, कि हम तुम्हारा नाम लेते हैं !

एहो, पंचनाम देवो !

कथा कहने को दिवस और निशा और, कि पहले तुम्हारी सेवा मे युगल-हाथ, नत-माथ करते हैं, कि ऊंची अटारी, नीची पिटारी पर

जलता दिया जलता रहे, कि रेशमी-डोर, मखमली-पालने में कुसुमकंठी वालक भूलता रहे, कि गहरे सरोवर की नीली लहरों में खिला कमल खिलता रहे, कि हम तुम्हारा नाम लेते हैं !

और शीतल फुहार पड़ती, नशीली वयार चलती और ठण्डी पनार वहती रहे, कि इस कुमाऊँ-पछाऊँ की धरती फूलों से महकती रहे, कि इस कथा की पावन-वेला में हम तुम्हारा नाम लेते हैं।

सिर से ढोक देते, पाँवों में लोट लेते हैं, कि पड़ती-संध्या, जगती-भोर में जिस गृहिणी ने तुम्हारे नाम का दीपक जलाया और तुम्हारे नाम की फूल-पाती चढ़ायी, उसके गोठ की गैया, गोदी के वालक की उम्र वड़ी करना।[1]

जिस घर के स्वामी ने तुम्हारे नाम की पंचमुखी-आरती जलायी, सूर्यमुखी-शंख वजाया, काँस्य-घण्टी हिलायी, दीप-वाती जलायी उसे, पट्टी का पटवारी, गाँव का मुखिया, जिले का कलक्टर वनाना, कि उसका रुतवा उठाना, कुनवा वढ़ाना, कि हम तुम्हारा नाम लेते हैं।

*　　*　　*

एहो, कथा के सुनने वालो !

आज पंचनाम देवों ने पंचाचूली की गुरुस्यली[2] में क्या करनी क

1. कुमाऊँ की यह परम्परा है कि गृहस्थ जन लोक-गायक। कथा कहने के लिए, अपने घर न्योतते हैं। सो, लोक-गायक, पंच देवताओं का स्मरण करते हुए, पहले घर की गृहिणी को ही आशी देता है।

2. पंचाचूली अलमोड़ा-स्थित एक उत्तुंग पर्वत-श्रेणी है। प्रा काल में, यहाँ तपस्वी ऋषि आश्रम वनाकर रहते थे। ये मन तपस्वी ऋषि 'गुरु' कहलाते थे, सो यहाँ की भूमि 'गुरुस्यली' के से प्रसिद्ध हुई। कुमाऊँ में इसका अपभ्रंश-रूप 'गुरुखली' प्रचलित

क्या भरनी भरी, कि गुरु के नाम की धूनी जलाई, अलख लगाई, भभूत रमाई, कि प्रणाम करते हैं मामू महेश्वरीनाथ, गुरु निर्मलीनाथ को, कि जिनने हमारा मुंड मूँड़ा, कान फाड़े। विद्या का भार, वेदों का सार दिया। हाथ में चमत्कारी-चिमटा, माथ में त्रिलोक-व्यापी त्रिपुण्ड दिया। ज्ञान का कमण्डलु, ध्यान का त्रिशूल थमाया, कि कन्धे पर खल्वा[1] की झोली दी और हाथ में संन्यासी-सोंटा दिया।

गुरुओं के नाम की अलख पुकार के, पंचनाम देवों ने चार चुटकी खाक पंचाचूली की वनस्थली की ओर उड़ाई, कि इस वनस्थली को भी हमारा नमस्कार है, जिससे बाँज-फल्यांट, चीड़-देवदार की समिधाएँ बटोरकर हमने गुरुओं के नाम की धूनी जगाई, अलख लगाई।

चार चुटकी खाक का क्या उड़ना, लाख की सौगात, देवों की करामात, कि आज पंचाचूली की वनस्थली में भरपूर बहार, इस पार, उस पार डाल-डाल झूल, डाल-डाल फूल गई, कि पात-पात फल लग गए।

जिस पंचाचूली पर्वत की वनस्थली में लंगूर-वानर घिंघारू-हिंसालू[2] को तरसते थे, आज फलों का खाना, फलों का हगना करने लगे।

पंछी कफू की 'कफू', न्यौली की 'नेहू' से सघन-वनांचल मुखर हो गया, कि प्रकृति-नटी आज छम्-छम् नाचने, थैया-थैया थिरकने लगी, कि जनम-जोगी, करम-जोगी, पंचनाम देवों का चित्त चलायमान हो गया।

पंचनाम देवों ने सोचा—"दिन आए, मास लगे। मास गए, बरस लगे। हमारा सारा जनम खाक के ओढ़ने, खाक के बिछाने में चला गया, कि हमारा जोगी-मन न रंग से रंगा, न रस से भीगा।···पुरवैया बयार चली, हमारे हिया हिलोर न उठी, ठण्डी पनार[3] बही, हमारे जिया पुलक

---

1. एक वन्य-तागा, जो संन्यासियों के लिए पवित्र माना जाता है।

2. दो पहाड़ी वन्य-फल।

3. 'पनार' वैसे यहाँ एक नदी भी है, अलमोड़ा के पूर्वांचल में, पर यहाँ 'सरिता' के अर्थ में ली गयी है।

न जगी, कि भीनी फुहार पड़ी, हमारा मन, मीठा तन रुपहला नहीं हुआ।

आज, यह ऋतु-शृंगार, वसन्त-बहार की वेला। डाली-डाली फूल महक, पंछी चहक रहे हैं, कि चित्त चलायमान, गात चंचल हो रहा है। क्यों न चार घड़ी आज हम भी, इस पंचाचूली पर्वत की गुरुस्थली में, वैरागी-मन का विराग बिसर जाएँ, उदासी जीवन की उदासी भूल जाएँ ?"

एसो, पंचनाम देवो, धन्य तुम्हारी माया !—

वैरागी मन का विराग, उदासी-जीवन की उदासी कैसे छूटे ?

क्या रचना रची, क्या विधान बनाया, कि चार गोले भभूत विभूति) के बनाए। मन्त्र-सिद्ध, तन्त्र-विद्ध किए—दिशा-विदिशा, चार दिशाओं में फेंक दिए। ..

गुरु की भक्ति, मन्त्र की शक्ति।

भभूत-गोले क्या फूटे, दिशा-दिशा भूचाल, खण्ड-खण्ड विस्फोट हो या, कि पर्वत-वनों का हिलना, धरती-आकाश का मिलना हो गया !

खाक की सौगात क्या ? खाक की करामात क्या ? खाक की सर्जना और, खाक की रचना और।

चार भभूत-गोले क्या फूटे, कि चार दिशाओं में चार विशालकाय ल्ल[1] उत्पन्न हो गए।

एहो, पंचनाम देवो, तुम्हारी करनी-भरनी की महिमा कैसे वरणी वर्णन की) जाए, कि इस वीर-कथा की वेला हम तुम्हें अपनी चाकरी सौंपते हैं।

* * *

चार दिशाएँ कौन ?

---

1. लोक-भाषा कुमाउँनी में इसका 'माल' रूप प्रचलित है।

पंचनाम देवों का आदेश न टले—चार भाई मल्ल रम्मत-झम्मत, उठा-पटक कुश्ती खेलने लगे।

एहो, कथा के सुनने वालो !

आश्चर्य करो, अवर अँगुली धरो, कि पंचाचूली की गुरुस्थली में आज चार भाई मल्ल कुश्ती क्या खेलते हैं, दाँतों से पहाड़ काटते, नखों से वृक्ष चीरते हैं, कि डार-डार की चहकती चिड़िया विलाप करती है, फूल-फूल का रसिया भँवरा सिर धुनता है, कि फल-फल का लोभी वानर रोता है, कि आज फलों का खाना, फलों का हगना प्राणों को भारी, जी को जंजाल हो गया है।

चौदह विद्या की कुश्ती सात दिन, सात रात खेल—चारों भाई मल्ल, पुनः पंचनाम देवों की चाकरी में उपस्थित हुए—"एहो स्वामिनो ! कुश्ती हम मल्लों का कर्म, कुश्ती ही हम मल्लों का धर्म है। एक यह कुश्ती रम्मत-झम्मत, उठा-पटक की—और कोई करतव हमारे पास नहीं, कि चार घड़ी और आपका जी बहलाएँ, मन टहलाएँ।······"

पंचनाम देव बोले—"सुनो हो, चार भाई मल्लो ! चार घड़ी नहीं आठ घड़ी नहीं—तुम्हारी चौदह विद्या की कुश्ती में सात दिन उजियाले चले गए, कि सात रातें अँधियारी बीत गई हैं। ··तुम्हारी इस कुश्ती से हमारा वैरागी मन खूब बहला-टहला है, अब हम अपने-अपने लोक को प्रस्थान करेंगे।···"

चार भाई मल्ल क्या बोले—"सात दिवस उजियाले चले गए ? सात रातें अँधियारी बीत गई ? तभी न, हम भूख से भुखाने, प्यास से तिसाने हो गए हैं। एहो, स्वामिनो ! रम्मत-झम्मत की कुश्ती तो हमें बहुत खिलाई, अब चार मन का कलेवा, आठ मन का भोजन भी करा दीजिए, कि हम पेट भर के डकार पहले, नाम तुम्हारा पीछे लेंगे।···"

मल्लों के वचन सुने, कि पंचनाम देव बिना दर्पण के मुख देखने लगे। आँखें उघाड़, अब जो उन्होंने ध्यान से चार भाई मल्लों की ओर देखा, तो उन्हें सोच पड़ा, कि एक पंचाचूली पर्वत में तो हमारी गुरुस्थली

थी, ये चार और पंचाचूली पर्वत कहाँ से पैदा हो गये ?···

* *

आज पंचाचूली की गुरुस्थली में—

पंचनाम देव बोल बोलना, हाथ हिलाना विसर गए, कि यह तो वही कथनी हो गई, कि 'बेटे जनमे, वंश को और फल लगे, वृक्ष को भारी हो गए।······'

ये मल्ल क्या रचे हमने, कि जी को जंजाल, जान को बवाल हो गए हैं। रम्मत-झम्मत की कुश्ती क्या खेली है, गुरुस्थली की वनस्थली में फलों के नाम के पात भी मिट्टी में मिला दिए गए हैं। अब भला, चार मन का कलेवा, आठ मन का भोजन कहाँ से लाएँ हम ?

"एहो, स्वामिनो !" मल्ल हाथ-भर आगे सरक आए—"पल बढ़ता है, कि पेट बढ़ता है हमारा। आप तो जनम के विचार-योगी, ध्यान-जोगी हैं, सो आपके ज्ञान-ध्यान को युग-युग पड़े हैं। अस्तु, स्वामिनो !······ गुरु-ज्ञान, धूनी-ध्यान फुर्सत से लगाते रहना, इस समय तो हमारे पेट की बाधा हरो, कि हम एक डकार भरेंगे, एक तुम्हारा नाम लेंगे।···"

जान फँसी फँसौटे में, राख फँसी लँगोटे में, कि पंचनाम देवों को गुरु-स्नान को लिए अपने हाथ के लोटे भारी पड़ गए।···

बोले—"एहो, वीरश्रेष्ठ मल्लो ! राह क्यों भूलते हो, मति क्यों विसरते हो ? हम खाकधारी जोगी, हमारे पास कहाँ चार मन का कलेवा, आठ मन का भोजन ? यहाँ तो खाक का पहनना-ओढ़ना, खाक का लेना-देना है, कि गुरु के नाम पर दिया-बाती जलाते हैं, फूल-पाती चढ़ाते हैं। किसी दिन चार गास को घर-घर की अलख जगा ली, किसी दिन उपवास कर लिया।···हमारे पास ये भिक्षावनी-झोलियाँ हैं, कर्म के कमण्डलु, ध्यान के चिपटे हैं, बस ! सो, वीरो !···चाहो, तो हमसे गुरु-ज्ञान माँगो, धूनी-ध्यान माँगो, कि तुम्हारे मुंड मूंड देते हैं, कान फाड़ देते हैं और

सोंटा हाथ, त्रिपुण्ड माथ दे देते हैं। पाँच जनम-जोगी, करम-जोगी हम हैं, कि चार खाकधारी जोगी तुम बन जाओगे। द्वार-द्वार माई के नाम पर सत पुकारेंगे, दाता के नाम की अलख जगायेंगे, कि ओरी माई, ओरे दाता !···भिक्षा दो, भिक्षा लो ! दान दो, ज्ञान पाओ।···"

मल्लों ने आकाश को कण्ठों की हुँकार से, धरती को पाँवों की पटक से कँपा दिया—"एहो, अन्यायी पंचनाम देवो ! आँख-रहते अन्धे, वचन-रहते अन्यायी क्यों बनते हो ? भिक्षा की चुटकी कितनी, दान की मुट्ठी कितनी ? एहो, स्वामिनो ! इस काली कुमाऊँ, पाली पछाऊँ में, यदि हमने माई के नाम का सत पुकारा, दाता के नाम की अलख जगाई भी, तो हमारे दन्त-छिद्रों को ही भरा जा सके, इतना अन्न उपलब्ध नहीं होगा।····जिस घर जायेंगे, झोली फैलायेंगे, हाथ पसारेंगे—घर की सास छोटी मुट्ठीवाली बहू को भिक्षा देने भेजेगी। और, छोटी मुट्ठीवाली बहू का हृदय भी छोटा होगा, कि हमारे पर्वतिया-गात देखेगी, तो मुट्ठी का अन्न देली (देहली) पर बिखेरकर, सास के पास भागेगी।··· और यों, मुट्ठी का अन्न' न फकीर की झोली में, न संन्यासिनी की चोली में' वाली कहावत सामने आयेगी।···सो, हे पंचनाम देवो ! अन्यायी बैन न बोलो, बाँके नैन न करो, कि हमें जन्म दिया है, पालन भी करो। नहीं तो आज पंचाचूली में हम तुम अन्यायी पंचनाम देवों की गुरुस्थली के स्थान पर गुरु के नाम की भभूत भी नहीं रहने देंगे।···सो अब अपना कल्याण चाहते हो, तो जैसे जनम दिया है, ऐसे ही पालन भी करो, कि या हमको आठ मन का भोजन, चार मन का कलेवा दो, कि या हमको टक्कर का पहलवान बताओ, कि जिससे लड़कर, या तो हम अपने पेट-पर्वतों को अन्न-भण्डार माँगेंगे, कि या अपने इन पर्वतिया-गातों से मुक्ति पाएँगे।"

पंचनाम देवों के लिए खुली को बांधना, बिखरी को सँभालना कठिन हो गया।···

एक पलक उठाने, एक पलक गिराने लगे, कि अब क्या करें ? कौन

रानी डोटियाली को नौलाख की तल्ली-मल्ली डोटी[1] घोड़ी थाप, एड़ी चाप लगाकर, राजा कालीचन्द अपने वाँए वैठने वाली वनाके लाए थे, कि गढ़ी चम्पावत में कालीचन्द का और कालीचन्द के मनो राज्य में रुपाली रानी डोटियाली का राज्य होगा।

वात सच थी।

छत्रधारी, खड्गधारी राजा कालीचन्द, कि उसकी सात और रानियाँ जो थीं, सैन से उठने-वैठने, आने-जाने वाली थीं, कि उनके लिए या आकाश में इन्द्र का वज्र ही कड़कता था, या महलों में राजा कालीचन्द का कण्ठ ही।

पर, रानी रुपाली डोटियाली के सामने तो, एक-दो ही दिन में, राजा कालीचन्द फूल का भँवर, सिर का चँवर हो गया था, कि रानी डोटियाली के न वुलाए ही पास आए और लाख लगाए से, परे न जाए।

एहो, रानी रुपाली के रसीले-वैन, कटीले-सैनों का क्या कहना, कि नौलाख सिरों का स्वामी, दो छोटे-छोटे चरणों का दास वन गया। जिसकी म्यान-धरी तलवार देखकर ही, दुश्मन अपने सिरको अपनी गर्दन पर नहीं पाते थे, वह खड्गधारी, धनुर्धारी राजा कालीचन्द—पलक उठाए से उठने, पलक गिराए से वैठने लगा।

रुपाली रानी डोटियाली को गढ़ी चम्पावत में आए, आज पहली रात्रि थी।

संध्या को डोला पहुँचा था। तव आच्छादन-अवगुण्ठन से रानी रुपाली वादल-छिपी हो रही थी, कि चाँद पूनम का या द्वितीया का—कौन जाने, कौन अनुमाने ?

राजा कालीचन्द सुई की डोर, हल की होर (रेखा)—जैसे रानी रुपाली की पीठ को छाँह, सिर को चँवर वने महल के अन्दर जो आए, मध्यरात्रि हो चली, अन्दर ही रह गए।

---

1. डोटी-प्रदेश।

महारानी भद्रा महाराज को देखती रह गईं, महाराज न-उठे अवगुण्ठन को।

जैसे बहुत दूर कोई किशोरी ग्वालन, अधर-पार्श्व में हाथ-हथेली आड़ी लगाए, मीठी-मीठी हाँक लगा रही हो—रानी रुपाली डोटियाली बोली—"सुन लो, जो भी हो तुम······"

"जो भी नहीं, रानी बहन !" महारानी भद्रा हँस पड़ीं—"तुम्हारी रानी दीदी हूँ मैं।"

"मेरे माता-पिता ने अपने समस्त सौन्दर्य-सौष्ठव से एक मेरी रचना की। न मेरी कोई 'रानी दी' और न मेरा कोई 'राजा भाई !' एक आकाश में दो सूर्य नहीं उगा करते।····"—रानी रुपाली गर्वित स्वर में बोली।

"हाँ, एक आकाश में एक ही सूर्य, रानी बहन !"—महारानी की वाणी का शहद न छूटा—"किन्तु, दूसरा एक चन्द्रमा भी तो उसी आकाश में उगता है ?"

अजानी मूर्च्छना से थान्त-अबोल, राजा कालीचन्द सोचने लगे—महारानी भद्रा ने यों रानी रुपाली की ओर अपनी परिभाषा तो नहीं कर दी है ? उन्होंने आदर और प्रेम-पूर्वक महारानी भद्रा की ओर देखा।

महारानी भद्रा पुनः रानी रुपाली के पास चली गई थीं और स्नेह-पूर्वक, बिना अवगुण्ठन उठाने का प्रयास किए ही, सिर पर हाथ फेरना चाहती थीं, कि रानी रुपाली फिर परे सरक कर, बोली—"जो भी हो तुम······"

"मैं इस गढ़ी चम्पावत नगरी की महारानी हूँ, रुपाली !" महारानी शेरनी-सी दहाड़ उठीं, इस बार। पर दूसरे ही क्षण न-जाने क्यों, उनकी उग्र ललाट-रेखाएँ लोप हो गईं। बोलीं प्यार से—"मैं सिर्फ तुम्हारी रानी दीदी···रानी दीदी भी न सही, सिर्फ दीदी हूँ।"

"जो भी हो तुम···" रानी रुपाली कटु स्वर में बोलीं—"कम से कम, गढ़ी चम्पावत की महारानी अपने को समझने का व्यर्थ दम्भ न

करना ! किसी भी राजा की सिर्फ एक महारानी होती है, और जिस राजा की महारानी कोई और हो···रुपाली उस राजा की कोई नहीं हो सकती !"

स्वर की कटुता से, एक वार तो महाराज भी तिलमिला उठे—"वहुत दम्भ ठीक नहीं, रुपाली रानी ! महारानी भद्रादेवी इस राज्य की सर्वमान्य महारानी हैं, और रहेंगी। उनके मान-स्थान का अपहरण कोई नहीं कर सकता। मैं तुम्हें केवल वंश-रक्षा के विचार से व्याहने गया था। और यह भी सच है, कि तुम्हारे रूप-यौवन की एक अ-पूरी झलक ने ही मुझे संज्ञा-शून्य कर दिया है, पर इस रूप-सागर के मन्थन से चौदह रत्नों की जगह, एक कुरत्न कालकूट ही निकलेगा—यह मैंने नहीं सोचा था।···" और राजा कालीचन्द वेग से उठकर, महारानी भद्रा का हाथ पकड़, वोले—"चलो, महारानी !"

महाराज द्वार तक पहुँचे ही थे, कि पीठ-पीछे से पुनः प्रगल्भ-स्वर सुनाई पड़ा—"कालकूट का वरण करने के लिए, महाकाल की-सी सामर्थ्य भी चाहिए, इतना और भी जान लीजिए आज, महाराज !"

राजा कालीचन्द पलटे—और पलटे ही रह गए। उनकी समस्त इन्द्रियाँ थरथराकर निश्चेष्ट-सी हो गईं, कि जैसे कोई वीणा किसी वालक द्वारा छेड़ी जाते ही, उठा ली गई हो !

* * *

उन्होंने, माथे पर सूर्य-किरणों का स्पर्श पाकर, आँखें उघाड़ीं। रात कव की वीत चली, भोर थी अव। और राजा कालीचन्द के माथे पर सूर्य-किरनें भी थीं और डोटीगढ़ी के दूसरे सूर्य, रानी रुपाली, की पारदर्शिनी-अंगुलियाँ भी थीं। राजा कालीचन्द ने पुनः नयन मूंद लिए, जैसे निद्रालु किन्तु भूखा शिशु, एक वार आँखें खोल, माँ का स्तन पाते ही पुनः आँखें वन्द कर लेता है।

—रात को, पीछे से पुकारते समय, रानी रुपाली के मुंह पर अव-गुण्ठन नहीं था।···

3

नयन-झील के मोती
श्रौर
सातवें-समुन्दर की सीपियाँ

लली दूध केला,

महर गाँव में जन्मी श्रौर वाईस भाई वफौल श्रपनी वीरगढ़ी में।

ग्रहों का योग, समय का संयोग क्या, कि वीरगढ़ी वफौलगढ़ी में, वफौलों की माताश्री को स्वप्न साँचा विधाता बाँच गए—"सुन हो, वफौल माता, कहे का वैर न मानना, वाईस वेटे वफौल तेरे, कि एक सूरज श्राकाश में, वाईस तेरी वफौलीकोट[1] में तपते हैं। एक वज्र राजा इन्द्र के इन्द्रलोक में, कि वाईस वज्र तेरी वफौलीकोट में। एक वज्रतन हनुमान से पूतवन्ती रानी श्रंजनी हो गई, कि वाईस वज्रतन वफौलों की

1. गढ़ी श्रौर कोट दोनों एक श्रर्थ में प्रयुक्त हैं।

दूधवंती महतारी तू है, कि बाईस बालियों की किलकारी, बाईस मुँहों की चटकारी तूने सुनी है। विचार करना, ध्यान में धरना। मंजिल भूलना, राह भटकना नहीं, कि कही बात सात गाँठ बाँधना, एक गांठ खोलना।···एक तेरी बफौलीकोट में क्या, सारी काली कुमाऊँ, पाली पछाऊँ में बाईस बफौलों की जोड़ का नहीं कोई, होड़ का नहीं कोई। और सुना हो, बफौलमाता···कि ऐसे ही, जो तेरे सूर्य-जैसे तपने, वज्र-जैसे कड़कने वाले बाईस बफौलों का वंश-सूत्र आगे बढ़ा सकें, ऐसी बाईस छोड़, दो कन्याएं भी नहीं।"

"मेरे बफौल निर्वंश न हो जाएँगे, प्रभो ?" बफौलमाता बोलीं—"मांस की लोथ थे, दूध सींचे, पालने झुलाए। जब पालना झूले, तड़ी तेल[1] लगाकर, घुनघुनिया[2] खेल लगाए, कि इनकी भूख से भूखी, इनकी प्यास से प्यासी रही। इनकी आँखों से सावन-भादों का भार लिया, अपनी आँखों से असीम प्यार दिया, कि लाड़ले मेरे जब धनुष को चढ़ाने, तलवार को चलाने वाले बनेंगे, तब बाईस बहुओं की रसोई चखूंगी, बाईस बहुओं की सेवा स्वीकार करूंगी, कि बाईस पोतों का मुंह देखूंगी, भरपूर परिवार, अक्षय भण्डार के सामने पलक झपकाऊँगी कि मैं तरूंगी, पितर तरेंगे।···मेरे नौलाख प्रणाम लो, प्रभो, कि अन्यायी वचन वापस लो, अशकुनिया वाणी मौन करो।···मेरी सात जन्मों की सेवा स्वीकार करो, स्वामी, कि जैसे गैया को ग्रास, पितरों को पिण्ड मिले, वह उपाय बताओ।"

"सुन हो, बफौल माता !" विधाता वरदानी वचन बोले—"तेरी कुलनिष्ठा, पितर-सेवा से बाँया लेख मिटाता हूँ, बाँए वचन वापस लेता हूँ। सुन, तेरे बफौल-वंश की जड़ दूब-सी अक्षय रहेगी, कि अपने बाईस बेटे बफौलों के संयोग की कन्याओं के सु-नाम ध्यान में धर लेना।···

---

1. पाँवों में तेल-मालिश।
2. घुटनों से चलकर खेल करने की अवस्था।

एक लली दूधकेला महरगाँव के टुन महर की सौभाग्यवंती, शौर्यवंती कन्या, दूसरी…"

ए हो, झुरमैली-कुरमैली बिल्ली के दूध-कटोरे में छेद पड़ जाए, कि गात सुरसुरा गई, सपन तोड़ गई, कि विधाता के बोल विधाता की वाणी में ही रह गए।…

* * *

आँखें क्या उघड़ीं, बफौलमाता की, मन-मन के मोती बिखर गए, कि सात छोर, सात मोड़ का आँचल भीग गया।

बफौलमाता सोचने लगीं, एक लली दूधकेला और बाईस मेरे बफौल बेटे!…कौन पथ देखूं, किस दिशा चलूं! एक फूल होता, बाईस पंखुड़ियाँ बीनती। एक फल होता, बाईस टुकड़े कर बाँटती। एक तागा होता, बाईस गाँठ बाँधती, कि एक नदी होती, तो बाईस धार बहाती।…

पर, एक लली दूधकेला, कि कन्या को हाथ छुए, वचन कहे से पाप भारी।…और जो एक बेटे की बहू बनाऊँ, तो इकाईस बेटे निर्वंश होते हैं, कि उनकी गैया को ग्रास, उनको पिण्ड नहीं मिलेगा।…

बफौल-माता सोचती रह गईं, कि एक परिधान होता, बाईस रंग रंगा लेती। एक लटी होती, बाईस फुन्ने लगा लेती, पर एक माथे पर बाईस सिंदूर-रेखाएँ कैसे काढ़ूं, कि एक गात के बाईस टुकड़े करने का पातक सिर पड़ेगा।…

"माँ!"

बाईस कंठों के एक स्वर से, बफौल माता की तन्द्रा टूटी। बाईस हाथ धुरड़, बाईस हाथ काँकड़[1] लिए, एक काली कुमाऊँ के बाईस शेर मृगया से घर लौट आए थे।

---

1. पहाड़ी मृग।

"माँ, हमारे दूध-कटोरे कहाँ हैं ?"

अव वफौलमाता को ध्यान आया, कि दूध-कटोरे भरने के नाम पर, आज गायें दुही भी नहीं गई हैं। सकारे ही मृगया को चले जाने वाले, अपने लाड़लों के लिए, वो सदा दूध-कटोरे भरे प्रतीक्षाकुल रहती थीं, पर आज स्वप्न-खोई धूप माथे चढ़ा लाई थीं, पर वछिया नहीं खोली थी, थन हाथ न लगाया था। वाईस वेटों के नाम पर, उन्होंने वाईस गायें पाली थीं। सेविकाएँ थीं, पर दूध न दुहने देती थीं, कि दूध-पूत माँ के हाथ में ही रहने चाहिए।···

"आज तुम उदास लगती हो, माँ ?"—वफौलवंधु पास आ गए—"वताओ, माँ, क्यों आज तुम्हारा मुँह उदास हो गया है ? किस वन का काँटा, किस पर्वत का कंकर लग गया है, कि उस वन में डाल की चिड़िया, पात का फल नहीं रहने देंगे, कि उस पर्वत को तोड़कर, रामगंगा में वहा देंगे।"

वफौलमाँ वोलीं—"न किसी वन का लगा काँटा है, न किसी पर्वत का कंकर ही, मेरे लाल ! मन का शूल ही मन को धूल वना रहा है। खैर, छोड़ो यह वात। तुम भूख से उनासे हो रहे हो।"

एक क्षण ललाट-रेखाओं को विद्युल्लताओं-सी कौंधाकर, वफौलमाँ स्नेह-भरे स्वर में, वोलीं—"पर, मेरे लाल ! अगुलियाँ दुखती थीं, कि ज्वर से कलाइयाँ मुरकती थीं, कि इक्कीस छोड़, एक गैया दुह पाई हूँ, सो सिर्फ एक कटोरा दूध-भरा है। जीने वाले वाईस भाई तुम, कि तुम वाईसों के अदिन मुझे लग जाएं और मेरी एक उमर तुम वाईसों को लग जाए—दूध कटोरा एक, किसे दूं, किसे न दूं ?"

वफौलवंधु वोले—"माँ, जैसे एक कोख से हम सवको जन्म, एक आँचल से हम सवको दूध दिया है, वैसे ही इस दूध-कटोरे की भी वाईस धार कर दो।"

वफौलमाँ की आँखों में एक चमक आई, एक गई। वोलीं—"मेरे लाल, इस जनम में तुम वाईसों से आँख उजियाली, ग

अगले बाईस जनमों में तुममें से एक-एक पुत्र भी मिल जाए, तो विधाता को नौ लाख प्रणाम दूँगी।···दूध-कटोरा तो बाईस धार बाँट देती, मेरे पूत ! पर, ज्वर के मारे, न गैया दुह पाई हूँ, न कटोरे धो-माँज पाई हूँ। कटोरा भी एक ही है, मँजा-धुला। बाईस कुँवर तुम दूध पीने वाले हो। कैसे पियोगे ?"

बफौल बंधु बोले—"माँ, एक रक्त, एक दूध से हमारी रचना हुई है। एक-एक कर, हम बाईसों भाई, एक ही कटोरे से दूध पियेंगे। माँ, कुन्ती माँ की कथा तुम सुनाया करती थीं न, कि उनके पाँचों पांडवों ने अपनी माँ की बाँटी हुई एक द्रौपदी को स्वीकार कर लिया था, तुम दूध-कटोरे को संकोच कर रही हो ?"

"तो, बेटो !···"बफौल माँ ने आँचल अपने मुँह पर डाल लिया—"मैं कुन्ती रानी से भी सत्रह चरण आगे बढ़ती हूँ, कि महर गाँव में दुन महर की एक कन्या दूधकेला लली है, उसे तुम बाईसों भाई पत्नी-रूप में स्वीकार करो।"

* * *

और यों,

लली दूधकेला का डोला, कल संध्या, बफौलों की बफौलीकोट में पहुँचा था, कि वह बाईस बेटों से आँख की उजियाली, गोद की हरियाली वाली, हिमशिखर-सी महाश्वेता बफौलमाता की एक बहू, बाईस सेजों की एक सोने वाली और बाईस गायों की एक दुहनेवाली, बाईस चूल्हों की एक पकाने वाली थी अब।

गए कल की भोर, विदा की वेला, लली दूधकेला से उसकी माँ सरस्वती देवी बोली थी—"बेटी, आज तक तू लली दूधकेला थी, कल से बफौली कोट में रानी दूधकेला कहलाएगी। लेकिन, मेरी लाड़ली, बिना मुकुट के राजवंशी बफौलों की पत्नी बनके, तू जी कैसे सकेगी, कि बफौलों की चाल से पर्वत हिलते, दहाड़ से शेरनी के गर्भ गिरते हैं। तेरे पिता

महर जी भी सात पैगों के एक पैग[1] कहलाते हैं, पर वफौलों के आगे उनको भी दिशा-विदिशा दिखाई देने लगता है।...न व्याहते तुझे, कि बाईस कसाइयों के कटघरे की एक गाय न बनाते, पर इधर 'ना' कहते, कि वफौल हमारे महर-वंश का नामेट[2] ही कर डालते !...पर, भला, तू कैसे जी सकेगी वफौलीकोट के अत्याचारी वफौलों की बांहों का बाजूबन्द, आँखों का काजल बनके, कि एक फूल के दो भँवरे भी फूल की पंखुड़ियाँ बिखेर देते हैं, तू तो बाईस वानरों को एक फल बनके जा रही है ?"

आज की रानी, कल की लली दूधकेला क्या बोली—"माँ हो, न हिया हार मान हो, न जिया उदास कर, कि मैं वफौली कोट में बाईस महलों की एक रानी, बाईस कुटुम्बों की एक स्वामिनी बनूंगी। गाय का कसाई कोई और, फूलों का वानर कोई और होगा, कि मेरे स्वामी वफौल शरीर-बल से हिमाल[3], किन्तु स्वभाव से पराल[4] हैं, कि एक पर्वत की बाईस चोटियाँ, एक वृक्ष की बाईस डालियाँ हैं। शेर को गरज मारेंगे, पर चींटी को गुड़, चड़ी[5] को चुग्गा डालेंगे, कि न मेरा जी दुखाएंगे, न ऊँचा बोल सुनाएँगे, कि मैं अपनी वफौलीकोट में घी का भोग, सुख की पलक लगाऊँगी, कि मुझे दिन-रातों का आना-जाना मालूम न पड़ेगा।"

और भाभी कलावती क्या बोली—"सुनो हो, ननदिया लली दूधकेला ! बाईस मक्खियाँ जिस पर बैठ जाएँ, वह गुड़ की भेली साबित नहीं बचती। बाईस बिल्लियों को एक दूध-कटोरा बन कर, तुम कैसे दिन काटोगी, वफौलीकोट में ?" और बैरन कलावती, कि उसका बालपन का सँतुवा[6] मर जाए, जवानी का सहारा न रहे, कि बुढ़ापे की लाठी टूट जाए, सौ बल खा गई, कि उसकी कमर को कमर-तोड़[7] हो जाए।

पर, लली दूधकेला, कि पूनम की चाँद, अमावस की बाती—कांजी

---

1. पहलवान। 2. वंश-नाश। नाम मिटा देना। 3. पुष्पात। 4. चिड़िया। 5. अभिभावक। 6. संरक्षक। 7. कमर [illegible]

गई, दूध न फटा ।

शहद-घोल बोल क्या बोली—"भौजी मेरी कलावती हो, एक सिर हजार बाल होते हैं, कि सिर फट नहीं जाता । एक वन में हजार वृक्ष ते हैं कि धरती धँस नहीं जाती, कि एक वृक्ष में हजार फल होते हैं, त टूट नहीं जाता है ।···एक शरीर में दो हाथ, दो पाँव और उनमें स अँगुलियाँ—मगर एक प्राण देह-भार से साँस-हीन नहीं हो ाता ।···एक रथ के सारथी द्वारिका नरेश थे, कि बाईस रथों की हाँक लगाऊँगी ।"

और कलावती का मुँह काला, तन ढीला पड़ गया था ।

ऐसी वचन से मीठी, ज्ञान से सरस्वती और भाग से लक्ष्मी बहूरानी धकेला को पाकर वफौलमाता, बिन बाईस रसोइयों को चखे ही, कंठ-ठ अघा, चरण-चरण इठला रही थीं ।

*　　　*　　　*

वीर-पर्व निकट आ रहा था ।

वफौलबंधु बोले—"माँ, बहुत दिन हो गए, चम्पावत नगरी नहीं ाए । आज्ञा दो, कि चार दिन गढ़ी चम्पावत नगरी में राजा कालीचन्द की ेवा में हाजर-नाजर हो आएँ । वीर-पाली निकट आ रही है । राजा ालीचन्द की न पाती आई, न खबर मिली । कहीं गढ़ी चम्पावत नगरी दुश्मनों की आँख-किरकिरी, पाँव-शूल न हो गई हो । अन्यथा राजा ालीचन्द पाती पठाते, दूत भेजते, कि मेरी बावन पंक्तियों की सभा तुम्हारे बिना सूनी पड़ी है । सो हम अब गढ़ी चम्पावत नगरी जाएंगे ।

वीरमाता बोली—"लाल मेरे, राज-सेवा में जाने की बात कहते हो, बाट नहीं रोकूंगी । पर, कल बहू मेरे घर आई है । चार दिन उसका पकाया खा जाते, कि मैं भी देख लेती, मेरी बहू देखें, रोटियाँ कैसी बनाती है ? गैया कैसे दुहती, दूध-कटोरे कैसे भरती है ?"

वफौल विहँस बोले—"माँ, वीरपाली समाप्त होते ही, हम पुनः

श्रपनी वफीलीकोट लौट श्राएँगे। तब तक तुम श्रपनी बहू को गैया का दुहना, दूध-कटोरों का भरना श्रौर रसोई का पकाना सिखा लेना, कि फिर कहीं यों न कहो, कि मेरी लाड़ली बहू को ऊँचा बोल कह दिया है ?"

माँ से विदा ले, वफील जाने लगे, कि रानी दूधकेला श्राड़े श्रा गई। घूंघट खोल बोली—"स्वामी मेरे, विवश हो गई हूँ, कि घूंघट उठा रही हूँ, मुंह का बोल बोल रही हूँ। मेरे श्रपराध क्षमा करना, कि श्राप मेरे माथे के फूल हैं, मैं श्रापके चरणों की धूल।"

बाईस स्वामियों को एक प्रणाम कर, रानी दूधकेला पुनः बोली—"कल मैंने एक दुःस्वप्न देखा है, कि मेरे श्राँगन से बाईस धाराएँ गढ़ी चम्पावत की श्रोर बही हैं, पर न वे लौटकर श्राई हैं श्रौर न उनका उद्गम ही रहा है। बाईस बाल, बाईस दाँत गिरे हैं, कि मेरे हिया बाईस दरारें पड़ गई हैं।···मेरे स्वामी, हाथ जोड़ती हूँ, चरण पकड़ती हूँ, कि श्राज श्राप लोग गढ़ी चम्पावत ी राज-सेवा में न जाइए।·· बाईस दिनों का श्रपशकुन है, कि वह मुझको ही लग जाए। श्राप बाईस दिवस-बाद ही राज-सेवा में जाएँ। वीरपाली को श्रभी एक महीना बाकी है। बाईस दिवस श्राप हमारी वफीली कोट की धरती भारी, उदासी हल्की कर जाएँ, कि मैं बाईस लटियों का एक फुन्ना, बाईस फुन्नों की एक लटी बनूंगी, कि बाईस हाथों की एक छड़ी बनूंगी, जो टेकेगा, उसी को श्राधार दूंगी, बाईस म्यानों की एक तलवार बनूंगी, जिसमें हाथ जाएगा, उसी म्यान में मिलूंगी, कि हे स्वामी, श्रपने सुदिन देती हूँ श्रौर श्रापके श्रदिन लेती हूँ—बाईस दिन बाईस गैया दुहूँगी, दूध-कटोरे भरूँगी, कि बाईस श्रटारियों, बाईस पिटारियों पर घी के दिए जलाऊंगी, कि मालिन बनूंगी, बाईस फूल-मालाएँ गूंथूंगी श्रौर मालकिन बनूंगी, बाईस ब्राह्मण, बाईस भिखारियों को —— [illegible] —— दूंगी, कि मेरे स्वामी जुग-जुग जिएँ।"

* *

[illegible]वफौल रुक गए।

[illegible]यों सौभाग्यवती दूधकेला ने वाईस गंग-धाराओं में स्नान किया, [illegible]स धामों की यात्रा की—कि, वाईस सेजों में फूल बिछा सोईं, कि [illegible]ईस दिवस इठलाई फिरी और वाईस रातों की नींद खोई।

वाईस अश्वों की एक वल्गा-सी, रानी दूधकेला जब वाईस शृङ्गार [illegible]र चुकी, वाईस कंठमाल पहना, वाईस कंठहार वरण कर चुकी—वफौलों [illegible] फिर विदा की वेला न्यौती, कि अब हम गढ़ी चम्पावत नगरी में [illegible]राज-सेवा को जाएँगे, कि जिस राजा कालीचन्द ने हमें अशेष सम्पत्ति [illegible]दी है, अटूट मान दिया है, न-जाने क्यों हमें पाती नहीं भेजता, क्यों नहीं दूत पठाता।"

विदा की वात से, पात-अटके ओस-कणों-जैसे आँसू ढुलक आए, कि या मोती सिंधु सुनील में, या रानी दूधकेला की नयन-झील में ही पाए जाते हैं।

नयन भर लाई, हाथ जोड़ लाई—"सुनो हो, मेरे स्वामी ! आपके चरण की दासी हूँ, कि ठोकर मार लेना, पर क्षमा कर देना। वाईस दिन मैंने आपकी सेवा की है, और स्वयं भी ऐश्वर्य भोगा है। मगर जिस ईश्वर ने आप-जैसे शौर्यवान स्वामी मुझे दिए, उसकी सेवा में एक वाती जला नहीं पाई, एक पाती[1] चढ़ा नहीं पाई।·· सो, स्वामी, अभी तो वीर-पाली[2] को आठ दिवस वाकी हैं। आप सात दिवस और यहाँ रुक जाइए, मैं सात दिवस का व्रत रखूँगी, स्वामी सत्यनारायण की कथा कराऊँगी, कि मेरा नारी-जीवन सफल हो।..." और यह कहते-

---

1. पल्लव।

2. वीर-पाली—पहले राजा लोग वर्ष-भर में एक दिवस वीर-पाली नियत करते थे। यह एक अंचल-व्यापी वीरोत्सव होता था, जिसमें स्थानीय ही नहीं, कभी-कभी सीमा-पारवर्त्ती राज्यों के वीर भी भाग लेने आते थे।

कहते, रानी दूधकेला लाजवंती-सी लजा गई, चम्पाकली-सी पुलक गई—आँचल की ओट मुँह कर, नखों से माटी कुरेदने लगी, कि वफ़ालों का मन मीठा हो आया, कि लली दूधकेला के बुलँश-फूल-से मुख की दंत-पाटी सातवें-समुन्दर की सीपियों को मात करती है।

यों वफ़ौल सात दिवस को और रानी दूधकेला के प्यार में ही रह गए, कि आठवें-दिन दिशा खुलते ही प्रस्थान करेंगे। वीर-पाली में भाग लेने, पहुँच ही जाएँगे।

4

सूर्य-सूर्य, चन्द्र-चन्द्र का अन्तर

गढ़ी चम्पावत नगरी में

रुपाली रानी के रसीले-वैन, कटीले-सैन राजा कालीचन्द को बे-भान कर रहे थे, कि साँझ ढल रही है—कब ढल रही है।

सारा राज-कार्य वयोवृद्ध मन्त्री विज्ञानचन्द्र जोशी सँभाल रहे थे। कई बार उनका मन हुआ, राजा को इस सम्मोहन-व्यूह से निकालने का प्रयास तो करें, जिसमें राजा कालीचन्द, गढ़ी चम्पावत का शेर पिंजरे का तोता बना, 'रुपाली, रुपाली !' रटता रह गया है।

राजगद्दी पर राजा-रानी के नाम के पुष्पहार रोज चढ़ते थे, मुरझा जाते थे।···

आज प्रातः विज्ञानचन्द्र महारानी भद्रा के खंड में गए। महारानी भद्रा महाकाल का पूजन कर रही थीं। दीवानजी को देखते ही द्वार-खड़ी परिचारिका कुछ बोलने को हुई, कि दीवानजी ने संकेत से चुप

रहने, परे चले जाने को कहा।

परिचारिका, कनखियों से देखती, अँगुलियों पर इकहरी होती चली गई।

पूजन समाप्त कर, महारानी ने सूर्यमुखी-शंख बजाया, तो दीवानजी शंख-ध्वनि मौन होने तक विस्मय-विमुग्ध सुनते रह गए।

रहा न गया, तो बोल उठे—"रानी बहू, सूर्यमुखी-शंख को इतनी तुमुल-ध्वनि करते हुए तब भी नहीं सुना मैंने, जब स्वर्गीय महाराजा भालचन्द्र इसे बजाते थे, या राजकुमार कालीचन्द्र। सुना था, नारी-द्वारा गुंजाने पर, शंख-ध्वनि लोप हो जाती है... पर, प्रत्यक्ष में कुछ विपरीत अनुभूति हुई है।"

महारानी भद्रा ने विहँस कर, शंख शंखाधार पर रख दिया। नैवेद्य-पुष्प ले, दीवानजी की ओर बढ़ीं। पहले चरणों पर पुष्प धरा, फिर नैवेद्य दिया।

नत-नयन हो बोलीं—"दीवानका[1], जब स्वर्गीय ससुर जी इस शंख को बजाते थे, तब वो महारानी माँ की स्मृति साथ नहीं रखते थे, जब महाराज इसे बजाते थे, तब उन्होंने हृदय में मुझे कभी न रखा ...मैं बजाती हूँ, तो उनकी-अपनी, दोनों की श्रद्धा आस्था का प्रतिनिधित्व करती हूँ।"

"तुम तो, द्वारिकेश हरि की एकनिष्ठ पुजारिन थीं, रानी बहू? फिर नारी के द्वारा महाकाल का पूजन तो, वीरगढ़ी चम्पावत नगरी में वैसे भी निषिद्ध है?" अपेक्षया गभीर-स्वर मे दीवान विज्ञानचन्द्रजी बोले—"रानी बहू, एक बात कहूँ। सात दाढ़ों के बीच की एक जीभ, सात काँटों से बिंधी एक कली हो तुम। छाया तुम्हारी पीछे, दुश्मन तुम्हारे आगे रहते हैं। सो, हर पग आँख-उघाड़े, राह-देखे धरो। महा-काल के तुम्हारे द्वारा पूजन और राज-शंख के तुम्हारे द्वारा गुंजन को

1. दिवान चाचा।

वात अन्य रानियों तक नहीं जानी चाहिए। नहीं तो, वात कल प्रजा तक पहुँचेगी। भगवान् न करें, पर यदि कल कोई विपदा गढ़ी चम्पावत नगरी पर पड़ी, तो उसे महाकाल का कोप माना जाएगा और दोष तुम्हारे माथे पड़ेगा, वेटी !"

महारानी भद्रा चिन्ताकुल हो उठीं। वात यथार्थ थी। पर, उनकी अपनी श्रद्धा-निष्ठा कुछ और थी। इस वार नयन उठा वोलीं—"दीवानजी, आप मेरे लिए ससुरश्री के स्थान पर हैं। आपके आदेश की अवमानना, सात धार वहाएगी, सात वन भटकाएगी।···पर, मैं सोचती हूँ—राजवंश की महाकाल पूजन-परम्परा अटूट रही है, अव तक। सुसरश्री थे, तव की वात है। मैं नादान थी। वो महाकाल का पूजन कर रहे थे, मैं जा पहुँची। पिता का सा वात्सल्य, माँ का सा लाड़ मैंने ससुरश्री से पाया था। रुढ़िगत-प्रतिष्ठा न कर पाती थी, कि जा गोद में वैठती, नाक पकड़ती, कान ऐंठती—हजार खेल खेलती थी।" कहते-कहते, महाराज भालचन्द्र की स्नेह-स्मृति से, महारानी की आँखें भर आईं।

"हाँ, रानी वेटी !" दीवानजी का स्वर भी भारी हो आया—"जव तुम इस नगरी में राज-वधू वनकर आईं थीं—केवल सात वर्ष की थीं। गज-भर का पहनना-ओढ़ना, मुट्ठी-कटोरा-भर खाना-पीना था तव तुम्हारा। वड़े महाराज तुम्हें नयन-तारा वनाके रखते थे, कि 'भद्रो मेरी वहू-वेटी है।'···"

"एक दिन, दीवान का," जरा प्रकृतिस्थ हो, महारानी भद्रा वोलीं—"उस दिन की वात, मैं कह रही थी। पूजन समाप्त कर, ससुरश्री शंख वजाने जा रहे थे, कि मैंने क्या नादानी की, नैवेद्य माँगा। ससुरश्री वोले, कि पहले शंख वजा लूँ, तव। मैं हठीली। क्या कन्या-वानी[1] वोली, कि नैवेद्य पहले। ससुरश्री कठोर-स्वर में वोले थे—'जिस दिन महाकाल का शंख वजने से पूर्व ही, नैवेद्य वँटने लग जाएगा, उस दिन

---

1. नादानी की वात।

महाकाल का शंख ही एक ध्वनि-शून्य घोंघा बन जाएगा, बहू !···और जिस दिन महाकाल के इस सूर्यमुखी-शंख के नाद से यह पूजागृह सूना हो गया···' और सतुरश्री के माथे पर, चिन्ता-रेखाएँ उभर आई थीं। दीवानका, सतुरश्री के स्नेहाश्रय की ढेरी-सारी बातें, शायद, भूल गईं, पर यह स्मृति न बिसर सकी।'' और, जबसे महाराज रानी रुपाली के मादन-मोहन रूप-जाल के मकड़े बन गए हैं. दिशाएँ खुलती हैं, कि मेरी आँखें खुलती हैं और महाकाल-मन्दिर में प्रवेश निषिद्ध होने से, यहां महाकाल की मूर्त्ति स्थापित कर, पूजन करती हूँ, शंख-नाद करती हूँ, कि कहीं राजवंश पर राहु-केतु की दृष्टि न पड़ जाए।''···

"तुम साक्षात् कुलदेवी लक्ष्मी हो, रानी बहू !" दीवान विज्ञानचन्द्र बोले—"काश, जाई-चम्पाकली की बेलि अफूली न रहती, अनार-आम के वृक्षों को अफला न रह जाना पड़ता। वैसे, तुम्हारी फल-फूलहीन छाया में भी असीम स्नेह है, सुख है—पर, महाराजकुमार तो रानी रुपाली के विषावत रूप-सरोवर के मच्छ बन गए हैं।"

महारानी भद्रा अबोली, माटी निरखती रहीं।

दीवानजी फिर बोले, "आज मैं तुम्हें बुलाने आया हूँ, बेटी !"

"कहाँ के लिए, दिवानका ?" अप्रत्याशित-प्रश्न से महारानी चौंक उठीं।

"राजगद्दी के वैधव्य को अब एक मास पूरा होना है, रानी बहू !" दीवानजी के स्वर में मर्मभेदी तीव्रता थी।

"मैं क्या कर सकती हूँ, दीवानका ? महाराज को मैं मना-मना कर, हार चुकी। पर, उनका रानी रुपाली के रूप-पाश से पग हिलना, तिल हटना नहीं होता। और मैं···मैं यह सोचती हूँ, काश, कि प्रणय की यह अटूट लड़ी गढ़ी चम्पावत की राजवंश-बेलि को पनिया-फुलिया-हरिया जाए, तो बहन रुपाली को मैं आँख का काजल, लटों का फुन्ना मानूँगी।"

"रानी रुपाली तुमसे महाराजकुमार को छीन रही है, तुम्हारे फूल-से जीवन को काँटों से बींध रही है और तुम उसकी गोद [illegible]

जौंल हाथ[1] कर रही हो । वरदानी वोल वोल रही हो ? रानी वहू, तुम्हें याद न होगा, सूर्यचन्द्र की सातवीं-किरन सी तुम थीं तव, सातवाँ वर्ष लगते ही, अलकापुरी से गढ़ी चम्पावत की राजश्री वनाके मैं लाया था तुम्हें यहाँ । तुम्हारी माँ जी ने तुम्हारे सुख-दुःख का साक्षी रहने का वचन मुझसे लिया था ।···और यहाँ, मेरी आँखों-आगे तुम्हारे कलेजे पर, छै तीर चलाए गए, कि मुझे वींध गए हैं, सिर पर छै नागिनें विठाई गई, कि उनकी कुंडलियाँ मेरी छाती पर, फुफकारें मेरे मानस में वसी हैं ।···और अव सातवीं यह, डोटियाली रानी रुपाली विजली वनकर, तुम्हारे सुख-सौभाग्य पर गिरी है, तो मन करता है, इस विषैली नागिन के विष-दंत तुड़वाकर, चींटियों का कलेवा कर दूँ, कि तव मेरे मानस का ताप मिटेगा, शूल निकलेगा । मैं इस कुलक्षणी डोटियाली···"

"दीवान जी !" महारानी भद्रा चीख उठीं—"जरा सँभलकर वातें कीजिए । यह न भूल जाइए, कि जिस चंद राजवंश के आप आज्ञापालक दीवान-मात्र हैं, रानी रुपाली उसकी भावी सर्व-प्रभुत्व-सम्पन्न महारानी हैं । उनकी अवज्ञा करने, उन्हें हल्के वोल वोलने का आपको कोई अधिकार नहीं ।"

दीवान जी ठगे-ठगे रह गए । महारानी भद्रा उनका सदैव पितृतुल्य सम्मान करती आई थीं । उनसे अपने प्रति यों रोष-भरे शब्द सुन, दीवान जी का मन दुःखी हो गया । रानी रुपाली का यों पक्ष लेना, दीवान जी को खटक गया ।

दीवान जी लौट चले ।

"दीवानका···"सात तारों का झनक टूटना हुआ ।

दीवान जी ने देखा, महारानी भद्रा की आँखों में आँसू उमड़ आये थे। दीवान जी कुछ वोलें, कि महारानी उनके चरणों पर गिर पड़ी—"मुझे क्षमा कर दीजिए, दीवानका !"

---

1. ईश्वर को प्रणाम ।

दीवानजी ने महारानी को अपने कंठ से लगा लिया—"मुझे पाप न लगाओ, रानी बहू ! तुम इस राजवंश की कुललक्ष्मी हो, तुम्हें लगने वाले पाँव कुष्ठी हो जाएँगे।"

"आपको बुरे वचन बोली, इसका शाप न देना, दीवान का ! मैं सौभाग्यवती, पुण्यवती नहीं रह जाऊँगी।" महारानी भद्रा ने हाथ जोड़ दिए—"आप मेरे लिए पिता-तुल्य हैं, पर महाराज या उनके प्रियजनों के लिए कटु शब्द मैं सुन-सहन नहीं कर पाती···रानी रुपाली मेरे लिए काली नागिन सही, महाराज के लिए वह मंगला-मधुरा है, मैं उसे गले की माल, पीठ की ढाल मानकर चलूँगी ··दीवान का, नारी पुरुष की अर्द्धांगिनी तभी होती है, जब वह वंश-क्षय का कारण न बने। निपूती नारी, पुरुष की अर्द्धांगिनी क्या, चतुर्थांशिनी भी नहीं। ऐसी मैं हूँ।"

क्षण-भर ठहर, दीवानजी को बोलने का अवकाश न दे, महारानी तरल स्वर में बोलीं—"सो, अपनी सात सौतों को मैं अपनी अंशरूपिनी मानती हूँ, कि जिस तरह एक कमल की सात पंखुड़ियाँ, एक नदी की सात धाराएँ होती हैं···अन्न मेरे पेट का नहीं बँटता, वस्त्र मेरे शरीर का नहीं बँटता सौतों में। एक चीज बँटती है—महाराज की प्रीति, उन्हीं की प्रतीति। वह बँट जाती है, बदले में मेरे हिस्से का उत्तरदायित्व भी बँट जाता है···तब किसी से शिकायत क्यों हो मुझे ? एक वृक्ष की कई डालियाँ, एक राजा की कई रानियाँ। सो, असन्तोष का कारण क्या ?···और, बहन रुपाली ? वह मेरे सारे सुख-सौभाग्य का अपहरण करके भी, यदि स्वयं फल-फूल जाए—अपने पुण्य उसे दे दूँगी, उसके पार अपने हिस्से लगा लूँगी, कि वह लता फूल गई, वह डाल फूल गई, तो उस दिन मैं महाराज की अर्द्धांगिनी बन जाऊँगी।"

"तुम धन्य हो, रानी बहू !···और··" दीवानजी के नयनों से स्नेहाश्रु चू आए—"और वह गढ़ी चम्पावत भी धन्य है, और मैं भी धन्य···"

वातावरण स्नेहावेग के कारण, कुछ क्षण ··

ग ।

"राजवहू, राज-सिंहासन की रिक्तता, एक मुझे नहीं, सभी को खल
ही है । मैं आज तुम्हें बुलाने आया था, रानी वहू, कि राज-सिंहासन
ो अब और श्री-हीन न रहने दो, कि किसी देश के चक्रवर्ती सम्राट के
दसान पर भी सिर्फ एक दिन का वैधव्य उसे भोगना पड़ता है—यहाँ
ास सम्राट नहीं, एक महाराजकुमार कालीचन्द हैं । ईश्वर उन्हें
तायु करे ।"

दीवानजी के स्वर में तिक्तता-तीव्रता वनकर, उनका राज-स्नेह वसा
; महारानी भद्रा समझती थीं ।

शान्त स्वर में बोलीं—"दीवान का, वहन मेरी रुपाली—महारानी
पाली, वह कहती थी, एक क्षितिज में एक सूर्य उगता है !"

दीवानजी, सहसा, महारानी की वात का मर्म न समझ सके । निर्वाक
महारानी का मुख-मण्डल निरखते रहे, कि एक मण्डल आकाश है, एक
ानी वहू भद्रा का मुख, कि दोनों ज्योति के आधार हैं ।

"और वह महारानी रुपाली···" महारानी भद्रा शिशुत्व की मुसकान
अधर-पाटी ला, बोलीं—"वह कहती थी, 'जो भी हो तुम'···मैंने
कहा, 'तुम्हारी रानी दीदी हूँ ।' मैंने बड़े प्यार से कहा था । वह कड़ककर
बोली थी, 'न मेरी कोई रानी दीदी, न मेरा कोई राजा भैया, कि मैं माँ-
कोख की एक लली, चम्पा-डाल की एक कली हूँ । मेरा माँ ने एक मुझे
जन्म दिया, कि एक क्षितिज दो-दो सूर्यों को जन्म नहीं दे सकता···
और पूछती थी, 'तुम कौन हो, जो भी हो तुम ?'···मेरा भी स्वाभिमान
तिलमिला उठा था, कि नगाड़ा सोंटे की चोटों से बजता है, राजवंशी
बात की चोट से गरज उठते हैं । 'मैं इस गढ़ी चम्पावत की, काली
कुमाऊँ, पाली पछाऊँ की महारानी हूँ, रुपाली !'···और वह महारानी
रुपाली, आँख न लगे उसकी प्रचंडता को, वत्तख-सी कंठिला बोली क्या
वचन, कि 'जहाँ कोई और महारानी हो, वहाँ महारानी रुपाली एक म्यान
की दूसरी तलवार'···और धार ऐसी कि म्यान चीर डाले !···"

दीवानजी सुनते रहे ।

महारानी भद्रा कहती रहीं—"मैं न उस तेजस्विनी का जाना चाहती हूँ, न म्यान का चिरना, कि गले मंगल-सूत्र ले मरूँगी, तो सात स्वर्गों का सुख भोगूंगी । निपूती चल बसूंगी, तो सात नरक सड़ूंगी, कि एक बहन रुपाली के गोद-भरी बनने से मैं इस महापातक से बच जाऊँगी । सो, दीवान का, मैंने उससे कहा, कि हाँ, सचमुच एक क्षितिज में दो सूर्य नहीं उग सकते, एक म्यान में दूसरी तलवार नहीं रह सकती ।"

"और तुमने यह नहीं कहा···" दीवानजी तीव्र स्वर में बोले—"एक क्षितिज में एक ही सूर्य सही, दूसरा चन्द्रमा तो उगता है ? एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं, पर किसी परिस्थिति-विशेष में एक कमर में दो म्यानें तो रह सकती हैं ?"

"कहा था, दीवान का !··· कहा था !" सहसा महारानी भद्रा ने अपना मुंह फेर लिया—"लेकिन, अब गढ़ी चम्पावत की राजरानी महारानी रुपाली है, रानी भद्रा नहीं ।"

"रानी बहू···"

बस, दीवानजी लौट चले, कि सूर्य गढ़ी चम्पावत नगरी का बुरा, आकाश का भला, कि विश्व को ज्योति देता है । चन्द्र आकाश का छोटा, चम्पावत गढ़ी का श्रेष्ठ, कि एक पाख-भर निर्मल ज्योति, शीतल छाया देता है, मगर दूसरे की आँचल की छाया, नयन-नेह की ज्योत्स्ना आठों पहर, बारहों मास गढ़ी चम्पावत के राजभवन का सौभाग्य सुरक्षित रखती है ।

यों सूर्य-सूर्य में अन्तर, चन्द्र-चन्द्र में अन्तर होता है, कथा सुनने वालो !

5

बयार की उल्टो दिशा, पनार की बाँको धार—

उधर चार भाई मल्ल धरती• धँसाते, आकाश गुंजाते गढ़ी चम्पावत नगरी की ओर बढ़े। इधर बाईस भाई बफौल भी, अपनी बफौलीकोट से लली दूधकेला के साथ विवाह कर, चम्पावत नगरी पहुँचे। परम्परा के अनुसार, उन्होंने बफौलीकोट से बारह बिसी मनों की 'बफौल-डुंगी' (प्रस्तर-खंड)—अपनी लुवासार-गुलेल से—गढ़ी चम्पावत के प्रवेश-द्वार के समीप फेंक रखी थी। पर, गढ़ी चम्पावत के राजा कालीचन्द अपनी आठवीं रानी रुपाली की सेज सोये थे, कि उन्हें साँझ-सूर्य के ढलने, भोर-सूर्य के उगने की भी सुधि नहीं थी। सो, नियमानुसार, 'बफौल-डुंगी' का पूजन नहीं हो पाया था। बफौल-बन्धु जब चम्पावत पहुँचे और उन्होंने अपनी 'बफौल-डुंगी' को अ-पूजित और उपेक्षित पाया,

तों उन्हें क्रोध हो आया। उन्हें लगा, कि गढ़ी चम्पावत नगरी के अ-दि
आ रहे हैं, जो आज 'वफोल-ढुंगी' उपेक्षा अनादर का पात्र बनी है।

वाईसों भाई, उदास और कुपित मन लिए, सीधे चम्पावत के राज
मन्त्री जोशी दीवान के पास पहुँचे। और···

"चरन छूते हैं, प्रणाम करते हैं, दीवानजी !"

दीवानजी मुड़े। देखा, एक वन के वाईस देवदार वृक्षों-जैसे, वाईस
भाई वफोल प्रणाम कर रहे हैं।

"आयुष्मान भव !" आशीर्वाद देते हुए, दीवानजी वफोलों की ओर
बढ़े—"मैं कब से तुम लोगों की प्रतीक्षा में था, वफोल श्रेष्ठो ! दूत पठाए
लौट आए, कि जब वे चले—प्रस्थान-द्वार से काना प्रवेश करता, मुंडेर
बैठा कौवा कुवाणी बोलता था, कि न बोलनी-बेला सियार बोल
गए थे···"

वफोलों को साथ ले, दीवानजी महल से बाहर चले आए। चलते-
चलते वफोलों ने दीवानजी को अपने विलम्ब से आने का कारण
बताया। वफोलों की कथा सुन, दीवानजी होंठों-होंठों मुसकराए, कि एक
कथा पाँच पाण्डवों की सुनी थी, कि एक द्रौपदी लाए थे। एक कथा निराली
इन वाईस वफोलों की, कि एक लली दूबकेला वाईस सिरों को एक
कलश, वाईस आंचलों में एक नारियल-सी लाए हैं···

वफोल बन्धु, असन्तोष व्यक्त करते हुए, बोले—"दूत पठाए,
अपशकुन से लौट आए, यह ठीक, कि अपशकुन की उम्र बड़ी, कि तब से
आप आज सन्ध्या दूत पठाते···पर, आज पहली बार गढ़ी चम्पावत
नगरी में वफोलों की गुलेल-ढुंगी[1] अपूजी रह गई है···वफोलों का इतना
बड़ा अपमान, वफोलों के लिए इतना बड़ा अपशकुन कभी नहीं हुआ, कि

1. लोककथा में, वफोलों-द्वारा चम्पावत नगरी में आगमन के समय
गुलेल-द्वारा बारह बीसी का (दो-सौ चालीस मन भार का) पत्थर फेंके
जाने की बात कथित है। ढुंगी पत्थर को कहते हैं।

...र काने का घुसना और प्रवेश-द्वार पर वफौलों की गुलेल-
...जा रह जाना। वफौलों की गुलेल-ढुंगी आज पहली बार—
...प्रक्षत, धूप-दीप-नैवेद्य की—प्रवेश-द्वार पर पड़ी रह गई है !"

दीवान विज्ञानचन्द्र बोले—"सुनो हो, वीर वफौलो ! बारह
... वीते, एक मास वीता है, कि एक मास की यह अवधि कटनी
वीतनी वीत गई है, पर दशा जैसे और रूठ गई है, परम्परा
...र टूट गई है, कि मन का कलपना और बढ़ गया है, हिया का
...ोर बढ़ गया है। गढ़ी चम्पावत नगरी के वंशचन्द्र[1] के कौन
...आने हैं न-जाने। भगवान उन अदिनों को दुश्मन के खेत में गाड़
...। बयार-पनार, दोनों उलटी बहती लगती हैं मुझे, वीर
...लो !..."

आकाश के सबसे घने काले बादल की तरह कम गरजने, अधिक बरसने
...अभ्यासी दीवान जोशी को, आज प्रथम वार चिंताकुल देख—वफौलों
... भी क्लेश हो आया, कि वफौलों की प्यारी गढ़ी चम्पावत नगरी पर
...ाहु-केतु क्या मंगल-स्थान बैठने लगे हैं, कि मन टूटे पानी के घट-पाटों[2]-
...सा बैठा जाता है।

प्रतिवर्ष वे अपनी वफौलीकोट में जाते थे। वीर-पर्व से पूर्व लौटते
थे। आने के दिन वफौल-वंश के अजेय-वीरत्व का प्रतीक गुलेल-प्रस्तर
फेंकते थे, कि उस गुलेल-प्रस्तर के दर्शन-पूजन के लिए, बूढ़े लाठी का
सहारा, बच्चे माँ की गोद छोड़कर दौड़ते थे, कि गढ़ी चम्पावत नगरी में
उचककर देखना, पिचककर चलना पड़ता था।

और वफौलों के स्वागत में बाईस दनदनाटी-नगाड़े, बाईस सूर्यमुखी-
शंख, बाईस ऊर्ध्वमुखी-तूर्य बजाए जाते थे, कि बाईस स्वर्ण-अश्व जोते

---

1. चन्द्रवंशी राजाओं।
2. पनचक्की के पाट पानी बन्द कर दिए जाने पर, धीमे-धीमे स्थिर हो जाते हैं।

जाते थे, कि गढ़ी चम्पावत नगरी के नयन-तारे बफौल आज लौटे हैं···

और आज बयार उल्टी दिशा, पनार बाँकी धार वही है, कि बफौलों की अगवानी के नाम पर, राजा कालीचन्द रानी की सेज नहीं छोड़ पाया !···

वीर बफौलों की भृकुटियाँ चढ़ीं देख, जोशी विज्ञानचन्द्र ने बताया, कि किस तरह गढ़ी चम्पावत नगरी का खड्गधारी नरेश कालीचन्द रानी रुपाली के कटाक्षों में कैद पड़ा है, कि हाथ-हथकड़ी नहीं, पाँव-जंजीर नहीं—पर, मन जो सैन-सींखचों में बन्द हो गया है, तो आँख-उघाड़े दिखता, हाथ-पसारे सूझता नहीं है।

"बफौल, मेरे वीरो ! तुम हो, कि गढ़ी चम्पावत नगरी की ओर आँख-अँगुली उठाने को धरती-धरमराज, गगन-देवराज की भी छाती हिल जाती है, कि एक वज्र का स्वामी मैं हूँ, बाईस वज्रों का राजा कालीचन्द !··· बफौल, मेरे बेटो ! जिस दिन काली कुमाऊँ, पाली पछाऊँ से तुम्हारे पाँवों की धमक हट जाएगी, उसी दिन राजा कालीचन्द के माथे से मुकुट भी उठ जाएगा।"

कुछ क्षण रुक, पुनः स्नेह-भरे स्वर में, जोशी विज्ञानचन्द्र बोले—"तिरिया की धार तलवार से तीक्ष्ण, गंगा से तीव्र होती है, मेरे बेटो ! राजा कालीचन्द उसी धार कट गया है, उसी धार बह गया है, कि तुम उस पर कोप न करना। यों वह तुम्हें अपनी राजधानी के बाईस बुर्ज मानता है···"

बफौलों को यों समझा-बुझा, दीवान जोशी ने राज-कर्मचारियों को नगरी में सन्देश देने भेजा, कि बफौल-डुंगी के पूजन का मंगल-[illegible] हो।

6

रूप का प्रचण्ड प्रपात
प्यार का थका हिरन-छौना

बफौल बन्धुओं को समझा-बुझा, जोशी दीवान—बफौलों के आगमन और उनके रोष की सूचना राजा कालीचन्द को देने—रानी रुपाली के एकखण्डी महल की ओर चले, कि राजरानी डोटियाली के आए से राज-पाट चौपट हुआ जा रहा है, कि राज-पाट अगर किसी चमार को मिल जाए, तो वह भी 'महाराज की जै', पाता है, और ऊँची जात, उठे हुए रुतबे और भरपूर भण्डारी घरानों की दुलहनें पाता है···कि, ऐसे ही, कभी राज-पाट का स्वामी किसी चमारिन को ब्याह लाता है, तो वह भी 'मैया महारानी' की पदवी पाती है !

मगर, बिना राज-पाट के चमारिन को ब्याहने वाला ठाकुर-ब्राह्मण भी चमारों की ही बिरादरी में गिना जाता है, कि, ऐसे ही, बिना

ज-पाट के स्वामी चमार के घर बैठने वाली राजरानी भी चमारिन लाती है, और महलों की मखमलिया सेज से बिछुड़ती है, सड़कों पर ड़ू चलाती है !

जोशी दीवान सोच रहे थे, कि राजा कालीचन्द को लाख की बात क यह समझा देनी है, कि राजा के लिए राज-पाट का महत्व राजरानी अधिक ही होता है, कम नहीं।

एकखण्डी महल पहुँचे जोशी दीवान, तो द्वार-खड़ी दासी न्यौली ने पने दोनों अधरों पर दाएँ हाथ की एक अँगुली खड़ी कर दी—बाँए थ से जोहार बजा लाई, कि···

समझदार के लिए संकेत ही बहुत होता है, कि लँगोट पहनने में नेपुण आदमी केवल एक बेत (बालिश्त) कपड़े से ही अपनी लाज ढाँप लेता है !

*　　　　*　　　　*

मधुकण्ठिनी रानी रुपाली, महाराज कालीचन्द को अपने डोटी देश का लोकगीत सुना रही थी—

"हुणिया की तामा की तौली,
त्रिन पोत्याई को झाल लागन्छ।
यो पापी मुलुक, सुवाई,
त्रिन वोल्याई को चाल लागन्छ।"[1]

महाराज कालीचन्द बोले—"हमारी गढ़ी चम्पावत नगरी में तो बिना कुछ किए-कहे बदनाम नहीं होना पड़ता, रुपाली प्रिय ? पर, तुम्हारी डोटी में ऐसे लोग बसते हैं, जो बिना कुछ किए-कहे ही, आँख रहते का

1. हुणिया तो अपनी ताँबे की तौली राख से नहीं पोतता, इसलिए उसमें धुंए की स्याही लगती है, पर, हे प्रियतम, इस पापी राज्य में तो बिना कुछ किए, बिना कुछ कहे ही बदनाम हो जाना पड़ता है।

अन्धा, कान रहते का बहरा, और ज्ञान रहते का अचेतन बना देते हैं।"

रानी रुपाली मुसकरा-भर दी, कि उसके रूप का रसिया छिन. मारे ही मरता है।

महाराज पुनः बोले—"रसिकों में भँवरा अपना नाम आगे लाता है, पर संध्या-समय वह फूल-कलियों की मिलनोन्मुख-पंखुड़ियों से मुकरने का प्रयास करता है। एक मुझ राजा कालीचन्द का नाम कहीं नहीं आता, कि मैं बन्द पंखुड़ियों में प्रवेश का प्रयासी हूँ।"

महाराज की इस बात में, बिना काँटे की चुभन, अनबँटा-दर्द, अनबनी-बात है यह समझती है न, सो या वक्रता आकाश-बिजली के चमचमाने, या रानी रुपाली के मुसकराने में है, कि इस मुसकराहट से पाला उसका पड़े, जिसके आगे-पीछे कोई न हो।

तीस दिवस, इकतीस रात्रियों का सहवास....

और महाराज कालीचन्द थे, कि सुवास ही पाई, पराग नहीं देखा। मिठास ही देखी, मधु नहीं चखा।

रानी रुपाली के सुख से महाराज वंचित ही रह गए थे।

एहो, रानी रुपाली की ऐसी प्रचण्ड रूप-राशि पर काल की चौकी, साँप की कुण्डली भली, कि महाराज कालीचन्द एक मास की मूर्च्छना, एक मास की कल्पना में, कि प्यास लगती है, प्यासा रह जाना पड़ता है। धार बहती है, कि बूँद कण्ठ नहीं उतरती, कि राजा कालीचन्द का प्यार-थका हिरन-छौना और रानी रुपाली का रूप प्रचण्ड प्रपात बन गया है..

राजा कालीचन्द ने आवेशवश रानी रुपाली को अपनी बाँहों में बाँध लेना चाहा, मगर रानी रुपाली का रूप दुश्मनों की जागीर बन जाए, कि उसकी गोदी में सिर रखकर, नयन मूँद लिए।

* * *

दीवानजी घड़ी चार प्रतीक्षा करते रहे, पर चलते-जोगी का रुकना कैसा, सोते-राजा का जगना कैसा!

...ीं चरणों झुक आई—
...चील-कौवे लग जाएँ।"—न्यौली चरणों झुक आई—
...जी, जब राजाजी जगें, तो उन तक यह बात पहुँचा
...कि वीरगढ़ी बफौलीकोट की माटी-परिपाटी को धन्य करने
...ीर बाईस भाई बफौल आज गढ़ी चम्पावत नगरी आ गए हैं।"
...ी रुपाली के वचन कैसे, कि या तिखास छोटी जात की मिर्चों,
...ी गढ़ी की कन्या रुपाली के वैनों में ही पाई जाती है।
...छोटे मुँह की, कि जात तेरी छोटी। बात बड़ी करती है, कि तेरी
...अटारी पर रखकर 'घुघुतिए का कौवा'[1] बुलाऊँगी। क्यों री,
...रे बाईस बफौलों की दूती हूँ मैं ? बफौल होंगे यार तेरे, कि उनका
...ा कहने को मेरे पाँव की जूती भी नहीं चटकेगी।"
"रानीजी ! वचन वैरी हो गए हैं, पाँव की जूती हूँ, पोंछ साफ कर
..., टूटे कील ठुकवा लेना।" न्यौली एक हाथ नीचे, एक हाथ ऊपर
...जोहार बजा लाई—"बाईस भाई बफौल काली कुमाऊँ, पाली पछाऊँ
...बिना छत्र के सम्राट् हैं, कि उन्हें देखकर, बयार अपनी दिशा, पनार
...पनी चाल बिसर जाती है। महाराज उन्हें अपने सिर का छत्र, पीठ
...का आधार मानते हैं, महारानीजी !"
"ओछी , ठहर, तेरे मंगेतर को लड़ाई की वेला बिना ढाल-तलवार
...का, सबसे आगे रखवाऊँगी।" रानी रुपानी बोली—"जब से इस गढ़ी
...चम्पावत नगरी में मेरे चरण पड़ गए हैं, महाराज के सिर का छत्र,
...पीठ का आधार—मेरे मुँह के वैन, मेरे नयन के सैन हैं। बाईस भाई
...बफौलों को अपने बाईस दरवाजों का दरबान, बाईस बैलों का हलिया
...बना के नहीं रखा, तो मेरा नाम रानी डोटियाली..."
"महारानी रुपाली कहिए..." न्यौली जोहार बजाकर, जिया ठेस

1. माघ-संक्रान्ति के त्योहार-पर्व को, कुमाऊँ में 'घुघुतिया त्योहार' कहते हैं। इस त्योहार-पर्व पर, पूरी कचौरी छत पर रखकर, कौओं को ... ... पड़ी ! मेरे हाथों को ला सोने की चूड़ी !"

मार गई।

"वाईस भाई वफील···विना छत्र के सम्राट् ! और, महारानी रुपाली के राज्य में ?" दुसह कोप के कारण, रानी रुपाली के दाँतों को पहाड़ के पूस-माघ लग गए, कि या अधर कँपकँपाने पर रानी रुपाली के दाँत ही रामवाण के फूलों-जैसे फूलते हैं, कि या पतली छाल उतारने पर भिगाए हुए वादाम ही उजले होते हैं !

8

केशरिया कपोलों की कँपकँपी हल्दिया हथेलियों का आधार

रानी रुपाली के हंसपंखी-दाँतों की कँपकँपी से कुलबुलाता वाईस वफौलों का वीरवंशी-नाम सेज-सोए राजा कालीचन्द के कानों ... क्या, रुपाली ।

"वफौल मेरे वीर, वफौल मेरे प्यारे···वे आ गए हैं क्या, रुपाली य ?" अचकचाकर, उठते हुए, महाराज ने प्रश्न किया ।

उत्तर न्यौली ने दिया—"हाँ, महाराज ! वे वीर वफौल आ गए हैं, और दीवानजी के साथ गए हैं। उनका कोई स्वागत-सत्कार इस वार नहीं हुआ, महाराज, कि उनकी वफौल-ढुंगी पहली वार अपूजी रह गई है। दीवानजी, वफौल-ढुंगी के पूजन-आयोजन के लिए घर-घ सन्देश भिजवा चुके हैं।"

"यह बहुत बड़ा अनर्थ हुआ है, भली ! बहुत बड़ी भूल मुझसे हो गई है। चलो, मेरा अश्व तैयार कराओ···और हाँ, रानी रुपाली प्रिय के लिए भी। हम दोनों उन वीर वफौलों का स्वागत-सत्कार और वफौल-ढुंगी का पूजन करेंगे।"

"केवल एक अश्व को जीन कसवाओ, लगाम लगवाओ, तुम ! केवल राजाजी के अश्व को !" रानी रुपाली, रोषपूर्ण नेत्रों से राजा कालीचन्द की ओर निहारती, बोली—"बाईस भाई वफौल होंगे राजाजी को लाड़ले। किसी का स्वागत-सत्कार करे, मेरा अँगूठा !"

···और रानी रुपाली के अनार-फूल-से अँगूठे की रक्त-शिराएँ भर आई।

न्यौली किंकर्त्तव्यविमूढ़-सी खड़ी-खड़ी रह गई।

राजा कालीचन्द बुझे-बुझे स्वर में बोले—"हाँ, केवल एक अश्व तैयार कराओ, भली ! तिरजाट[1] राजा कालीचन्द का···"

रानी रुपाली ने हाथों की अँगुलियाँ चटकाई, पाँवों की ठसकाई। मुँह फेर लिया।

राजा कालीचन्द क्या गए, कि रानी रुपाली के मुँह में मक्खी चली गई—आज तक राजा कालीचन्द मेरे सरोवर की मछली, मेरे गोठ का बैल बना रहा, कि किसी के बुलाए से पग नहीं उठा सका, कि मैं चुम्बक की शेरनी, वह लोहे का शेर था।

और आज—बाईस भाई वफौलों की वफौलीकोट में तिरिया लड़की को, गैया बछड़े को जन्म दे, कि आषाढ़-सावन वहाँ वर्षा न हो, पूस-माघ धूप न आए।

न-जाने उनके नाम का मंत्र क्यों राजा कालीचन्द को पिंजरे का तोता बना उठा ले गया, कि मेरे रूप-यौवन का सिर-चढ़ा जादू, पाँव-तले उतर गया !

रानी रुपाली को सोच पड़ गया, कि ऐसे कैसे अपनी उम्र को न

---

1. पत्नी का दास।

...ौल हैं, कि उनके नाम के आगे मेरा रूप भी कच्ची डोर,
...ा गया ?
...ड़ी हाथ ली, कि वह रानी रुपाली की कलाइयाँ देख शरमा
...घण्टी पर चोट मारी, कि वह रुपाली का वचन सुन अगूंजी
...ओ, तुम...''
... ढिग आई ।
...जोड़ बोली—''आदेश, रानीजी...जीभ मेरी वैरन, कि इसके
...चाटना न मिले—आज्ञा दीजिए, महारानीजी !''
...नो, तुम...''
...ली सोचने लगी, कि या उतार-चढ़ाव पर्वत हिमाल, सिन्धु
...में ही हैं, या रानी रुपाली के सैन-वैनों में ही, कि पलक की धूप,
...की छाया है ।
''सुनो, तुम...तुम्हारा नाम क्या है ?'' रानी रुपाली ने प्रश्न किया ।
''न्यौली, महारानीजी !''
''तू मुझे सिर्फ 'रानी वा' कहा कर, सुन तू !'' रानी रुपाली बोली—
...म तेरा बड़ा प्यारा है । मुझे बड़ा प्यारा लगता है, कि मेरी डोटी गढ़ी
...न्यौली नाम का एक गीत होता है, जिसे गाते समय हाथ-हथेली अधर-
...दर्श लगती है, तो उसमें अपने प्रियतम का प्रतिविम्ब दिखाई पड़ता
..., कि उस समय मुँह से सिर्फ प्यार के बोल निकलते हैं। भली तू,
...तेरा नाम 'न्यौली' किस ब्राह्मण ने धरा, कि मैं उसे गोठ की गैया,
भीतर का अन्न दान दूंगी ।''

''महारानीजी ! हाए, मेरे वचनों को दुश्मन अपने घर ले जाए !
गोठ की गैया, भीतर का अन्न मेरी माँ को दीजिएगा, रानी वा, कि उसी
ने मेरा नाम यह धरा है !'' न्यौली घुटनों-झुक आई—''रानी वा,
स्वभाव आपका, कि पल करेला, पल केला है, मैं इस स्वभाव को हाथ-
आरती, माथ-अक्षत लिए फिरूँगी । मेरी माँ, महाराज के अश्वों के लिए,
विशेष घासवाली थी, कि तब अश्वों को हाँकने के लिए सोंटा हाथ नहीं

लेना पड़ता था। सघन वनांचलों से, मेरी माँ हरी घास लाती थी। उस सघन वनांचल में एक चिड़िया वहुत चहकती थी, 'नेहू···नेहू··· नेहू'···माँ को उसका चहकना वड़ा भला लगता था। एक दिन माँ ने अपनी साथिन से पूछा, कि इस चिड़िया का नाम क्या है? उसने वताया, 'न्योली!' ···तब अपने पिता जी से मैं माँ में थी।"

पुलककर, न्योली ने वात को मिश्री-सा मुँह में ही रख लिया। कुछ ठहरकर, फिर वोली—"और जब माँ मुझ से पालना झुलाने, गोद खिलाने वाली वनी—उसने मेरा नाम 'न्योली' रखा, रानी वा, कि तव या उस सघन वनांचल में न्योली चिड़िया ही चहकती थी, या अपनी माँ की गोद में मैं ही किलकती थी, कि अँगूठा मैं चूसती थी, दूध माँ के गले उतरता था!"

"पात चौड़े-चिकने केले के होते हैं, न्योली तू!"—रानी रुपाली विहँस उठी—"वात लम्बी और भली तेरी होती है, कि तुझे मैं अपनी आँख का अंजन वनाके रखूँगी, कि गढ़ी चम्पावत नगरी में तेरा नाम पहले, मेरी सौतों का वाद में आएगा।···एक वात पूछूं? वता तू, कि ये वाईस भाई वफौल अपनी उमर न भुगतें, कौन हैं, कैसे हैं?"

न्योली वोली—"रानी वा, वीर वफौलों को आँच न लगे, कि रूप उनका, शौर्य उनका ऐसा है, कि हमारी धरती-पार्वती को उनके लिए हमेशा राई-नून लिए फिरना पड़ता है। आज आप भी राजा जी के साथ जातीं, तो देखतीं, रानी वा, कि आज गढ़ी चम्पावत नगरी के पशुओं की आँखों में भी काजल आँजा गया होगा, कि रीती-आँखों से वफौलों को नहीं देखते।"

रानी रुपाली के केशरिया-कपोल क्रोध से कँपकँपाकर गिर पड़ते, कि उसने अपनी हल्दिया-हथेलियों का आधार दे दिया—"अच्छा, न्योली, एक गोपन-पालकी तो तैयार करवा, भली तू! जरा मैं भी तो देखूं, तेरे वाईस भाई वफौलों की सूरत!"

...रती-पार्वती के बेटों का संकल्प

...फौल श्रेष्ठों के बाईस स्वर्ण-अश्व चम्पावत गढ़ी के प्रशस्त राज-मार्ग पर हाँक पा गए, कि टाप धूल उड़ाते थे, लाप धरती नापते थे, ...की अयाल वाले, बाँकी चाल वाले घोड़े।

सूर्यमुखी-शंखों, ऊर्ध्वमुखी-तूर्यों, घनघनाटी-काँस्यघंटों और ...नदनाटी-नगाड़ों की तुमुल-ध्वनियों से दिशाएँ चौंक रही थीं।

उत्सव और, उल्लास और था। नगर-वासियों का ठसका और, नगर ...न्धुओं का लटका और था, कि हाथ-हाथ दीप-बाती, हाथ-हाथ फूल-...ाती थी।

वीर-श्रेष्ठ वफौलों की गुलेल-ढुंगी का पूजन-आयोजन था, कि ...रती-धरमराज ने चार धाम का शासन, गगन-देवराज ने देवलोक का ...न्द्रासन क्या पाया होगा।

महाराज कालीचन्द और दीवान जोशी बाईस भाई वफौलों के

ग्यारह-ग्यारह स्वर्ण-अश्व दाएँ-बाएँ लिए चल रहे थे, कि बाईस भाई वफौलों से उनके भी शीश ऊँचे, ललाट चौड़े हो रहे थे, कि धन्य हैं वो माँ-माटी जिन्होंने दूध-धार, अन्न-ग्रास देकर बाईस भाई वफौलों से काली कुमाऊँ, पाली पछाऊँ की कीर्ति-पताका दिशा-विदिशा लहराई है, कि वीरों में या नाम पाँच भाई पांडवों का, या बाईस भाई वफौलों का ही आता है।

यथा-विधि, वफौल-डुंगी का पूजन हुआ।

जोशी विज्ञानचन्द्र ने कुश-जल, तिल-अक्षत का संकल्प वफौलों के हाथों में दिया, कि वफौल मेरे वीरो, काली कुमाऊँ, पाली पछाऊँ की माटी-परिपाटी का नाम उजागर करना, कि हम सब कुमाऊँ की धरती-पार्वती के बेटों की एक-दिन-की-आयु तुम्हें लग जाए, कि जुग-जुग तक यह धरती-पार्वती तुम बाईस वफौलों को मधुर-मोदक, निर्मल आसन देती रहे, कि तुम इसकी सुरक्षा और कीर्ति के साक्षी-प्रहरी रहोगे !

वफौलों ने संकल्प धरती-पार्वती को सौंपा, कि प्राण-रहते कुमाऊँ-पछाऊँ के दूध-पूत, माटी-परिपाटी पर आंच न आने देंगे। हमारी धरती-पार्वती की ओर जिसकी कानी आँख लगेगी, या धूप वही सेंकेगा या हम ही, कि कुमाऊँ की माटी-परिपाटी की सुरक्षा के लिए, हमारी बाईस हथेलियों में से एक भी बिना सिर की नहीं दिखेगी !···कि, हमारे वंश में उत्पन्न होने वाले बालक के दूधिया-दांत भी इस धरती-पार्वती की सेवा करते ही टूटेंगे !

कुमाऊँ की धरती-पार्वती के नाम, वीर मेरे वफौलो !

···धन्य हो तुम, कि तुमसे कुमाऊँ-पछाऊँ की धरती-पार्वती का सदा हाथ-ऊँचा, माथ-चौड़ा होता है, कि इस वीर-कथा की वेला हम तुम्हारा नाम लेते हैं !

10

चार भाई मल्ल बाईस भाई बफौल

गढ़ी चम्पावत नगरी के नर-नारी बफौल-ढूंगी का पूजन कर ही रहे थे, कि अपने सामने हिमालतन मल्लों को देखकर थाल की फूल-पाती थाल, हाथ की दीप-वाती हाथ में लिए रह गए।

सब एक-दूसरे का मुख देखते रह गए, कि अचल पर्वतों में हिमालय का नाम सुना था, चलने वाले पर्वत आज देख रहे हैं!

उन चार मल्लों के नाम आने से कथा भारी होती है, कि उनके राह की पुल कच्ची, गाँव की गैल सँकरी हो जाए। वचन क्या बोले—"यही राजा कालीचन्द की गढ़ी चम्पावत नगरी है क्या? जहाँ बाईस वज्रों का कड़कना, बाईस बिजलियों का चमकना होता है?"

नगरवासियों को यही अनुमान लगाना कठिन हो गया, कि इन

चार चल-पर्वतों की कौन-सी कन्दरा से यह गगन-भेदी हुंकार आ रही है।

राजा कालीचन्द और जोशी दीवान भी आश्चर्य से अबोले रह गए। तब वीर बफौल क्या बोले—"हाँ, हिमालतन परदेशी अतिथियो ! बाईस बेटों की सेवा लेकर, नौलाख बेटों को मेवा देने वाली धरती-पार्वती और गढ़ी चम्पावत नगरी यही है, कि जहाँ के महाराज के राज्य-द्वारों में बाईस चौकीदारों का पहरा है।"

"बाईस कंठों से एक स्वर बोलने वाले, बाईस सिरों से एक संकेत करने वाले तुम—तुम कौन हो ? गढ़ी चम्पावत नगरी के बाईस वज्र, बाईस बिजलियाँ तुम्हीं तो नहीं ?"—मल्ल अभिमानी परिहास करते बोले।

"कुमाऊँ की धरती-पार्वती के बाईस बेटे, गढ़ी चम्पावत नगरी की सुरक्षा के बाईस प्रहरी—बाईस भाई बफौल हम हैं, अतिथि वीरो ! इससे अधिक कुछ नहीं।"—बफौल विनम्र बोले।

"गढ़ी चम्पावत नगरी के बाईस प्रहरी ! हा...हा हा"—मल्ल अट्टहास कर उठे—"पंचनाम देवों के गुरु की धूनी में भभूत न रहे, कि न वह पंचनाम देवों-जैसे मूर्खों को गुरु-ज्ञान, धूनी-ध्यान और भभूत-दान देता, न वो महामूढ़ चार हाथियों को बाईस मच्छरों के देश में भेजते। अरे, गढ़ी चम्पावत नगरी के बाईस बच्चो, द्वार के चौकीदारो ! बोलो, बाईस मक्खियाँ तुम्हारी गढ़ी में घुस आएंगी, तो उन्हें भी हाँक पाओगे, या नहीं ?"

बफौल क्या हँसते हैं, जैसे महाकाल के हिमाल देश में फूल-फूल बरफ गिरती है। बोले—"परदेशी मक्खियों के लिए हम गुड़ की भेली रखे रहते हैं, वीरश्रेष्ठो !"

बफौलों के वचन क्या सुने, कि मल्ल अभिमानी पाताल ... आकाश गुंजार पहुँचाने लगे, कि गढ़ी चम्पाव[illegible] भय से मूर्च्छना आने लगी।

जोशी दीवान हाथ जोड़ बोले—"एहो, अतिथि वीरो ! अकारण क्रोध वीरों को नहीं, भाँड़ों को ही शोभा देता है। पहले यह तो आप बताइए, कि आप कौन से शुक्राचार्य के शिष्य हैं, कि आपकी हुँकार से हमारे खेतों की हरियाली मुरझाने लगी है। एक कंस को द्वारका-नरेश भगवान श्रीकृष्ण यमपुर पठा चुके, तुम किस कंस के पठाए आए हो, कि गढ़ी चम्पावत नगरी पर अकारण कानी-आँख, ओछी-दृष्टि फेर रहे हो ?"

जैसे जलती-धूनी में घृताहुति पड़ गई हो—मल्ल ज्वालामुखी-जैसे फूटने लगे—"सुन रे, गढ़ी चम्पावत के वैरी तू !···हम पंचनाम देवों के मंत्र-पुत्र हैं, कि हमारा नाम सुनकर पर्वत कन्दराओं में घुसने लगते हैं, नदियाँ बालू में छिपने लगती हैं। और हम पंचनाम देवों के पठाए गढ़ी चम्पावत में आए हैं, कि तुम्हारा राजा कालीचन्द या हमें जोड़ के मल्ल देगा, या चार मन का कलेवा, आठ मन का भोजन देगा।"

"पंचनाम देवों के मंत्र-पुत्र, मल्लो !" बाईस भाई बफौल बोले—"पंचनाम देवों का पावन नाम हम पड़ती-संध्या, जगती-भोर में लेते हैं, कि तुम भी हमारे आदरणीय अतिथि हो। आज हमारे अतिथि रहो। गढ़ी चम्पावत का उत्सव देखो, कि आज घर-घर दिए जले होंगे, द्वार-द्वार पर तोरण सजे होंगे। आज हमें अतिथि-सत्कार का अ[illegible] कल गढ़ी चम्पावत नगरी में वीर-पर्व मनाया जाएगा। हम बाईस भाई बफौल, तुम्हारी युद्धेच्छा भी पूरी करेंगे। जय-पराजय तो विधि-हाथ है, पर अपयश-माथ न रहे, महाराज कालीचन्द के दरबार से, कुमाऊँ की धरतीपार्वती की देली से, कोई रीते-हाथ न लौटे, हम अपने बाईस मस्तकों का हरजाना-नजराना देंगे !"

अज्ञानी मल्ल और बिफर उठे, कि गरम मिट्टी ठण्डा पानी डालने से और ज्यादा फूटती है। अन्यायी वचन बोले—"ओरे, बाईस भाई बफौलो ! सुनो, कि बाईस वज्र, बाईस बिजली होगे तुम अपने राजा कालीचन्द के दरबार के ! हम मंत्र-पुत्र मल्लों के लिए, तुम बाईस

गीदड़ की आवाज पाई है तूने। हथेली की सुर्ती अपने सिर की जुएँ बना लेना, भाँड-धर्मी मल्लो ! कि, तुमसे पंचनाम देवों का नाम भी बदनाम होता है।··· सुन रे, घमण्डी मल्ल पूर्विया ! पहले हमारी बफौलकोट से फेंकी यह गुलेल-ढुंगी उठाकर प्रवेश-द्वार से एक ओर करले, फिर मल्ल-युद्ध को पग बढ़ाना, कि हम तुम्हारे चरणों के दास बन जाएँगे। नीची आँख, काली कीर्त्ति लिए, घर-घर-दर-दर तुम्हारे नाम की भीख माँगेंगे।"

पूर्विया मल्ल ने तमककर, कनिष्ठा से बफौल-ढुंगी को उठाकर फेंक देना चाहा, कि अँगुली टूटकर बकरी के काने थन-सी लटक गई। एक हाथ से उठाना चाहा, कि हाथ कंधे से उस तरफ चला गया, कि पीठ पर या तो चंचला-चपला तिरिया की लटी ही झूलती है, या पूर्विया मल्ल का हाथ ही आज झूलना झूलता है।

अपनी असमर्थता से, पूर्विया मल्ल पानी से पतला, पराल (पुआल) से हलका पड़ गया, कि बाएँ हाथ की जोहार बजाकर, बोला—"सुनो हो, वीर बफौलो ! यह विश्वास नहीं होता, कि यह पर्वत से भारी पत्थर, तुमने गुलेल-ढुंगी से फेंककर, बफौलीकोट से यहाँ पहुँचाया होगा।···तुम इसे गुलेल-द्वारा यहाँ से बफौली कोट को फेंको, हम तुम्हारे गुनाम बन जाएँगे, कि जब तुम राजा कालीचन्द के दरबार में प्रवेश करोगे, सबसे पहले तुम्हें हम शीश झुकाएँगे, कि तुम्हारी चाकरी बजा लाएँगे !"

बफौल मेरे वीर, विहँस आगे बढ़े।

लुवासार गुलेल उठाई, बारह बीसी की ढुंगी चढ़ाई, कि ढुंगी कहाँ फेंकी, बफौली-कोट को !

पराजय से मल्लों के शीश झुक गए, कि 'खाक से बने हम, तुम लाख से बने हो, कि हम चार भाई मल्ल तुम वीर बफौलों की वीरता को नमस्कार करते हैं !'

जोशी विज्ञानचन्द, राजा कालीचन्द घुटने-ऊँचे, गज-चौड़े हो गए, कि धन्य हैं हम, कि बाईस भाई बफौलों का पहरा है, हमारी नाक-लाज पर।

गढ़ी चम्पावत नगरी के नौलाख लाड़लों ने 'जयजयकार' करते हुए फूल-पाती चढ़ाई, दीप-बाती फिराई, कि तुम वफौलों से हमारी धरती-पार्वती पुत्रवंती, शौर्यवंती है, कि हम उस माटी का तिलक लगाते हैं, जहाँ वफौलों के चरण पड़ते हैं।

पर, वफौलों के मुंह पर हर्ष की नहीं, विषाद की रेखाएँ थीं।

लुवासार गुलेल का एक पल्ला टूट गया था, कि वफौलों का हिया हारमान, जिया उदास हो गया था—आज वफौल-ढूंगी वफौलीकोट नहीं पहुँची होगी!

* * *

जोशी दीवान और राजा कालीचन्द ने उनकी आरती उतारी, कि 'वीर वफौलो, हम तुम्हारी जय बोलते हैं, कि तुम्हारे बल-विक्रम से बांकी चम्पावत गढ़ी का नाम धन्य-धन्य होता है!'

वफौल, मेरी कथा के स्वामी,

काले बादल छाँट गए, गोरी किरनें चमका गए, कि या स्याही को सोख्ता ही सोखता है, कि या व्यथा को वफौल ही पी जाते हैं!

11

पूजा के अक्षत, आँचल के अदिन

मल्ल बाईस भाई बफौलों से बोले—"वीर श्रेष्ठ बफौलो ! हाथी शरीर से विशालकाय होते हुए भी केशरी-से कम शक्तिशाली होता है। हम आप बाईस बफौल केशरियों की शरण हैं, कि जन्म हमें पंचनाम देवों ने दिया है, पालन हमारा तुम करो, कि हम पंचनाम देवों से भी पहले तुम्हारा नाम लेंगे, कि बुलाए से, पास आएँगे, लगाए से, दूर जाएँगे। राजा कालीचन्द के दरबार में चार द्वारों का पहरा हमें भी सौंप दो, कि हम चार मन का कलेवा, आठ मन का भोजन और कहाँ पाएँगे ?"

वीर बफौल राजा कालीचन्द से बोले—"सुनो हो, महाराजा ! इन पंचनाम देवों के मंत्र-पुत्रों को गढ़ी चम्पावत नगरी की चार दिशाओं

के चार-द्वारों का पहरा सौंप दो, कि ये आपकी चार कीर्त्ति-पताकाओं-जैसे द्वार-द्वार फहरते रहेंगे।"

जोशी दीवान बोले—"सुनो हो, मेरे बफौल बेटो ! आज यह मल्ल पाँव-तले हैं तुम्हारे, कि जीभ निकाल जीविका माँगते हैं। समय कभी विपरीत हो गया, तो चुटिया पकड़के नचाएँगे, कि या मथुरा में कंस का राज था, या गढ़ी चम्पावत नगरी में इन चार मल्लों का होगा। दूसरे, अड़तालीस मन अन्न दिवस का ! गढ़ी चम्पावत नगरी का आधा अन्न तो ये ही चौपट कर जाएँगे। कौन जाने, काल कब करवट ले, पवन कब दिशा बदले ?"

वीर बफौल बोले—"आप ठीक कहते हैं, दीवानबा ! अज्ञानी-अभिमानी शत्रु को आश्रय नहीं देना चाहिए। ये पंचनाम देवों के मंत्र-पुत्र हैं, सो इनकी प्राण-हत्या का पातक सिर नहीं लेना चाहते हम। आज इन्हें अतिथि मानकर, चार मन कलेवा, आठ मन भोजन दे दिया जाए। कल की भोर, चार मन का कलेवा देकर, काली कुमाऊँ, पाली पछाऊँ की सीमा-परे जाने का आदेश !"

पर राजा कालीचन्द की क्या मति बिसर गई, क्या दशा रूठ गई ! बोले—"वीर मेरे बफौलो, कल नहीं, सात दिवस बाद विदा करना इनको। गढ़ी चम्पावत नगरी का अन्न-कोप इतना कन्जूस नहीं, कि दिवस सात इनके पेट न भर सके। सात दिवस ये चार दिशा-द्वारों के द्वारपाल रहेंगे, कि बारह खण्ड धरती में मेरा नाम जाएगा।"

मल्ल बोले—"हम आज्ञा के आधीन हैं, महाराज ! बोले से रहेंगे, संकेत से जाएँगे।"

न बफौल, न जोशी दीवान कुछ बोले, कि पूजा जब खण्डित होने लगती है, तो थाली के अक्षत बिखरते हैं, कि अदिन जब आँचल पड़ने वाले होते हैं, तो वाणी के वचन रूठ जाते हैं !

12

गोपन-पालकी, उघड़ी-आँखें—

जाई का फूल वीनने,

गाई का दूध दुहने की वेला निकट आ रही थी, कि बाईस सूर्य पश्चिम से पूर्व को लौट रहे थे, एक सूर्य पूर्व से पश्चिम जा रहा था।

वाईस सूर्य धरती के,

एक सूर्य आकाश का—कथा सुनने वालो !

*　　　*　　　*

गोपन-पालकी का वातायन-वस्त्र एक ओर कर, रानी रुपाली ने अपने हिरनिया-नेत्रों को उघाड़ आर-पार हेरा—बाईस भाई वफील, जोशी दीवान और राजा कालीचन्द के दाएँ-बाएँ पार्श्वों में, बाईस सुवर्ण

अश्वों पर बैठे गढ़ी चम्पावत नगरी को धन्य कर रहे थे, कि मन-मन के मोदक, कण्ठ-कण्ठ की जयकार पा रहे थे, कि काम्बोजी-अश्वों को एक भार वीर वफीलों का, एक भार उनके कण्ठ की फूल-मालाओं का हो रहा था।

"न्यौली···"—अँगूठा ठुड्डी, तर्जनी अधरों से लगाकर, रानी रुपाली बोली।

"हाँ, रानी बा···"

"तू सच कहती थी···"—रानी रुपाली ने मुँह अन्दर कर लिया। कुछ क्षरण नेत्र मूँद रही। फिर न्यौली का हाथ अपने हृदय पर धर लिया।

वापस पालकी एकखण्डी-महल के निकट पहुँच चुकी थी। रानी रुपाली नयन मूँदे, न्यौली का हाथ हृदय-धरे, खोई-खोई थी, कि न्यौली ने कर्ण-पार्श्व में अँगुली फिराई—"रानी बा !"

रानी रुपाली न बोली। किसी मधुर मूर्च्छना में सुधि-[illegible]ी वह, सद्यःमुकुलित कमल-पाँखुड़ियों-जैसे उसके नयन अधखुले, अ[illegible] कँपे—कि न्यौली ने रानी को बाँहों में भर लिया—"काश, [illegible]ड़ी को मैं पुरुष बन जाती, रानी बा !"···

"तब तू मुझे यों बाँहों में न बाँध पाती, न्यौ[illegible]ानी के बर्तन में नौनी डालने से कुछ नहीं बनता-बिगड़ता, पर ज[illegible]ाग से नौनी का साक्षात्कार होता है···"

"अभी तो नहीं हुआ न, रानी बा ?"—न्यौली राजा कालीचन्द की मूर्च्छना की प्रहरी रही थी।

"सूर्य का तेज चन्द्रमा वरण नहीं कर सकता, न्यौली तू !" तीव्र-स्वर में रानी रुपाली बोली।

एकखण्डी-महल आ चुका था। गोपाल-पालकी रुकी। रानी रुपाली अपने कक्ष में चली आई और साथ में न्यौली।

झूले पर अधलेटी-लेटी, रानी रुपाली बोली—"आज मुझे खूब झूला झुला दे, न्यौली !"

13

आँचल की छाया, आँखों का काजल

आज [illegible] फूल वाली ऋतुवती हुई है, कि अब चन्दवंश के चलने की आस [illegible] दूध [illegible] मोद भर गई है।

न्योली ने यही लौट [illegible] सारे अन्तःपुर में फैला दिया।

महारानी भद्रा दौड़ी-दौड़ी आई। हाथ में जल-कलश, आँचल में विल्व-फल लिए, कि मेरी वहन रुपाली कलश-सी भरे, विल्वफल-सी फले।

छहों अन्य रानियाँ रिस-भरी, अपने-अपने खण्ड पड़ी रहीं, कि यह डार फल गई, यह लता फूल गई, तो हमारा बाँझपन वैधव्य से भी दुसह हो जाएगा, कि राजाजी के लिए हम बिना सुवास-पराग की कलियाँ हो जाएँगी, बिना नीर की कलशियाँ, कि न हम महक पाएँगी, न हम छलक पाएँगी।

पर, महारानी भद्रा का मन और, कि जल-कलश में दूध-दही, घी-
ाक्कर और गोमूत्र डालकर, 'पंचामृत' (पंचगव्य) बनाया, फल रानी
पाली के आँचल, जल अंजलि में दिया और सघन-हरित पीपल-वृक्ष की
ाया में स्नान करवाया, कि बेर सेजवती, बेर फलवती होना !

"फलनेवाला वृक्ष पहले फूल से फल देता है, बड़ी रानी ! ऊसर में
दिवस-दिवस की वर्षा से भी अंकुर नहीं फूटता, कि सेजवती बन जाने
ात्र से, नारी पुत्रवती नहीं बन जाती !"—रानी रुपाली के स्वर का
नेश्चयात्मक दर्प-व्यंग महारानी का मन दुखा गया।

फिर भी, सस्नेह बोलीं—"महारानी तुम, कि आज तुम प्रथम बार
ृत्ती हुई हो, दिवस पाँच से मेरे हिस्से की भी सेजवती हो लेना, कि
हारे पुत्रवती होने से मेरे पुण्य उजागर, पाप क्षीण होंगे। सो, तुम्हारे
कड़ुए बोलों की औषधि से अपनी अपूर्णता का उपचार कर लूँगी।"

महारानी भद्रा की आँखें छलक आईं।

साशीर्वाद बोलीं—"महारानी, यहाँ रहती और, तो तुमसे उम्र की
ड़ी, मानकी छोटी बनकर तुम्हारी सेवा करती, कि तुम राज-दरबार
को जातीं, तो मैं चँवर झुला देती।···पर तुम्हारी शुद्धि के दिवस तक
ठहरूँगी, कि उस दिन तुम्हें अपनी आँखों सेजवती देख जाऊँगी, क्योंकि
महाराज से शंका है।···और फिर अलकापुरी चली जाऊँगी···सो, आज
तुम्हें फिर एक बार सिर्फ 'रानी बहन' मानकर, आँचल की छाया, नयनों
का काजल देती हूँ, कि प्रथम फूल से [illegible] बनना तुम।···"

और, चली आईं महारानी भद्रा, कि बादल हिमालय से टकराकर
पीछे लौटने पर बरसते हैं।

एक गगन-सूर्या,
एक आकाश-चन्द्रावती—

आज बड़ी भोर न्योली उठी, कि रानी रुपाली वा की सेवा में जाऊँगी, कि आज की रात अपने 'उनकी' सेवा में रही हूँ। पर, जब रानी वा की सेवा में जाऊँगी, तब 'इनका' रुतबा उठेगा, वेतन बढ़ेगा। नहीं तो, लड़ाई में सबसे आगे बिना ढाल-तलवार का इनको रखवाएँगी।

"इधर आ, भली !"

न्योली रुक गई। महारानी भद्रा पूजा-गृह को जा रही थीं। बोलीं—"भली तू, जरा यह पूजा-थाल ले चल, कि मेरे हाथ अशक्त हो चले हैं। मैं तुझे महाकाल का प्रसाद दूंगी, कि तेरा बुद्धिवल्लभ गढ़ी चम्पावत नगरी के विद्वानों की प्रथम हार (पंक्ति) में बैठेगा। मुट्ठी-भर मोती दूंगी, कि गूंथ गले पहनना, बुद्धि-वल्लभ तेरी नींद को बैरी

चनकर जिएगा।...” और हँस पड़ी, कि न्योली ने पूजा-थाल थाम लिया।

पूजा की यथाविधि समाप्ति पर, महारानी ने महाकाल को अर्पित राजवंशी सूर्यमुखी-शंख बजाया, कि न्योली ने कान अँगुलियों धर लीं—“यह शंख नित्य आप ही बजाया करती थीं, महारानी वा? मैं समझती थी, कि महाराज की अनुपस्थिति में दीवान जोशी बजाते हैं।”

“धीरे बोल, न्योली, धीरे, कि रहस्य की बातें बयार-संग उड़ती हैं।” महारानी घबराए-स्वर में बोलीं—“भला दीवान जोशी को क्या अधिकार, कि वो इस राजवंशी सूर्यमुखी-शंख को बजाएँ? इस शंख को केवल राजपुरुष ही बजाने के अधिकारी हैं, भली!...और कोई नहीं।”

“आप महारानी वा?”

“मैं भी नहीं, न्योली!” महारानी हाथ जोड़ती बोलीं—“पर, तू मेरे रहस्य की साक्षी रहना, किसी से कहना नहीं। महाकाल के इस शंख को बजाना तो दूर, नारी के लिए, इसे स्पर्श करना भी निषिद्ध है, भली! मेरी सौतों को यह रहस्य मालूम हो गया, तो बात राज-परिषद तक पहुँचेगी और गुरुतर राज-दण्ड की भागी बनूँगी मैं। तू मेरी लाड़ली सखी है, मेरी लाज रखना, कि यह भेद खुलते ही गड़ी चम्पावत नगरी में मेरे लिए ठौर नहीं रह जाएगी।”

“आप मेरी महारानी वा हैं, भला मैं औरों से आपकी बात कहने लगी? पर इतना बता दीजिए, आपके इस शंख को बजाने में, अपराध की क्या बात है?”

“किसी से न कहना,” भद्रा देवी हाथ जोड़कर, बोलीं—“नारी-द्वारा इस शंख का वादन अनिष्ट का मूल माना जाता रहा है। भगवान् न करे, कल गड़ी चम्पावत नगरी पर काले बादल घिर आएँ, तो पहला वज्र मुझपर गिरेगा, पहली बिजली मुझपर टूटेगी।... मैं तो सिर्फ एक संकल्प-सिद्धि के लिए यह त्रिलोचन-पूजन कर रही थी, कि मेरी सोने-रुपाली कलश-सी भरे नहीं, फूल से फले नहीं।”

—कि, सघन वनांचल में 'न्यौली' चिड़िया ही चहकती है,

कि, गढ़ी चम्पावत नगरी की अन्तःपुरवासिनी रानियों के कानों में न्यौली दासी ही बोलती है—महारानी भद्रा महाकाल का राजवंशी सूर्य-मुखी-शंख बजाती हैं !···

सात सौतेली रानियों के गाँवों में कभी बादल न बरसें, न सरसों फूले, कि पधानियों के हाथ मेंहदी न लगे, पटवारिनों के सिर पिछौड़ा न पड़े—जो महारानी भद्रा के अनिष्ट को सात मुखों वाला एक शूल, सात जीभों वाला एक नागिन बन गईं, कि छाती चीर देंगीं, विष बुझा देंगी।

षड्यन्त्र रचने लगीं, कि सर्प के विष की औषधि हिमालके स्याँकुरी-म्याँकुरी वनों में मिलती है, पर सौतिया-दर्प की दवा वैद्य सुपेन[1] के पास न थी। महारानी भद्रा तो बिना काँटे की कली, बिना छल-बल की लली।

···और रमौलिया इस कथा-घड़ी हुड़क से हाथ हटा, छड़ी टेक आराम करता है, कि एक चंचला, चपला, चटुली डोटियाली रुपाली रानी और दूसरी महारानी भद्रा—दोनों का नाम लेता है, कि पहली को वन के कटीले-काँटों को और दूसरी को आँगन की तुलसी, गोठ की गैया को सौंपता है!··· कि, एक के सत्यानाशी रूप को शनिश्चर की दशा लग जाए, (हट्ट, तेरी गोरी चमड़ी गल-गल के गिर जाए !) कि जो अपने कुकर्मों से दीपक की ज्योति धुँधली करती है, सुखी जीवन में क्लेश भरती है !···कि, दूसरी के लक्ष्मी-स्वरूप को धूप में शीतल पानी, भूख में मीठे मोदक मिलें, कि जो, पति की वंश-रक्षा के लिए, काँटे अपने पाँवों लेती, फूल पराए पाँवों बिछाती है, कि एक गगन-सूर्या, दूसरी आकाश-चन्द्रावती है—कि, एक धूप जलाती है, दूसरी छाँव सुलाती है।

"आज आप से विशेष बातें करनी है। कल मैं अलकापुरी के लिए प्रस्थान करूँगी।"

*   *   *

और आज,

महारानी भद्रा की सेज सोए हैं, राजा कालीचन्द, कि जैसे कोई दिन-भर चला-थका यात्री शीतल चाँदनी में सोया है।

बातों-बातों में, महाराज ने कह दिया—"तुम रानी रूपाली के पाँव भारी होने की पूछती हो, महारानी ? विना आग-पानी के संयोग के चावल नहीं पकता है, महारानी, विना बादलों के टकराए वर्षा नहीं होती है।"

"इसमें दोष महारानी रूपाली का नहीं, महाराज !" महारानी विनोद करती बोलीं—"फूल में मधु-पराग अवश्य होता है, पर फूल स्वयं वह मधु-पराग भँवर-मुख तक नहीं ले जाता ! छलकते जल-पात्र से कोई अंजलि-भर न पी सके, दोष जल-पात्र का नहीं। शेर के शाकाहारी होने की बात, आपसे सुन रही हूँ।"—और महारानी उन्मुक्त-भाव से खिलखिला उठीं।

महाराज खिसिया गए।

महारानी बोलीं—"ग्लानि न करें, महाराज ! रानी बहन का सौन्दर्य ही इतना प्रखर-प्रचंड है, कि उसे सहसा नारी की आँखें ही नहीं झेल पातीं। फिर पुरुष तो वैसे ही परोसी-थाली के अभ्यासी होते हैं, आप तो महाराज ठहरे !"

"व्यंग्य न करो, महारानी !" व्यथित-स्वर में, महाराज बोले—"शायद तुम मेरे मर्मस्थल पर चोट कर, मेरी अवहेलनाओं का प्रतिशोध लेना चाहती हो ? पर, वैसे मैं स्वयं पछता रहा हूँ, महारानी, कि किस आग को अपने घर ले आया हूँ। रूपाली साधारण औरत से कुछ अधिक है, महारानी !"

"मुझे इससे 'ना' नहीं ।"

"और मैं उसकी दृष्टि-परिधि में पहुँचते ही, पिंजरे का पंछी बन जाता हूँ, कि उसके कटीले-रसीले सैन-बैनों के सींखचों को तोड़ना मेरे वश की बात नहीं, महारानी !" राजा कालीचन्द बोले—"तुम इसे मेरा अपौरुष कहलो । मेरी कायरता कह लो ।..."

"कूदने से पहले, सरोवर गहरा दिखाई देता है, महाराज !... और चढ़ने से पहले, पहाड़ ऊँचा ।" महारानी बोलीं—"बहन रुपाली का प्यार जहाँ एक बार आप पा लेंगे, फिर यों सन्ताप न होगा । चन्द्रमा का प्रकाश शीतल होता है, पर उससे धरती शस्यवती नहीं होती । सूर्य का प्रकाश प्रचण्ड-प्रखर अवश्य होता है, पर धरती की गोद उसी से लहलहाती है । मुझमें और बहन रुपाली में, यही अंतर है, महाराज ! ...और आपको चन्दवंश की अक्षयता के लिए, मेरा नहीं, बहन रुपाली का आंचल-छोर ही थामना है ।"

महाराज चुप रहे ।

महारानी फिर बोलीं—"अभी आपने मेरे रुष्ट होने की बात कही थी, पर प्रतिशोध की बात मैंने स्वप्न में भी नहीं सोची, नाथ ! मुझे ऐसा लगता है, बहन रुपाली ही मेरी पूर्णता का प्रतीक बन सकेगी । उसके कोप पर भी मेरा प्यार निछावर है ।...पिछले पखवारे मैं ऋतु-मती हुई थी, नाथ ! जाने का निर्णय कर चुकी थी । सो अन्तिम बार, केवल एक बार आपसे ऋतुदान चाहती थी, वह मुझे मिल गया है आज । आज से मेरे हिस्से के ऋतुदान की अधिकारिणी भी बहन रुपाली होगी । जब उसकी गोद भर जाए, मुझे सूचना देना न भूलिएगा, महाराज ! मैं उस दिन भगवान् जागेश्वर के मन्दिर में दिए जलाऊँगी । ब्राह्मण-गरीबों को अन्न-वस्त्र दान दूँगी । पितरों के पिण्ड, गैया को ग्रास दिलाऊँगी, कि उस दिन मेरा नारी-जीवन सफल हो जाएगा ।"

स्नेह और भावावेग से बोझिल, महारानी

नौनी[1]—सा हो चला था। महाराज महारानी के प्रदीप्त-ललाट की रेखाओं में अँगुलियाँ फेर रहे थे।

महारानी पुनः बोलीं—"बहन रुपाली आपके प्रति असमर्पिता रह गई है। केवल इसलिए, कि आपने उसकी इच्छापूर्ति नहीं की है। असन्तुष्ट नारी का समर्पण भी निष्फल होता है, महाराज, कि ऐसी अवस्था में वह मन-भर का तन भले ही सौंप दे, सागर-सा मन नहीं सौंपती।"

विहान-बयार के संस्पर्श से, अब महाराज के नयन मुंदे जा रहे थे। महारानी भद्रा ने उनको अधर-स्पर्श से जगाया—"महाराज, बहन रुपाली प्रगल्भा है। उसके मान की संतुष्टि न होगी, तो चन्दवंश निर्वंश ही रह जाएगा। उसे आप कल ही महारानी के पद पर आसीन कीजिए। आपसे-मुझसे तो क्या, वह गढ़ी चम्पावत नगरी के शंख-तूर्यों से भी अपने लिए 'महारानी' की ध्वनि सुनना चाहती है।"

"पर, यह तुम्हारे प्रति अन्याय होगा, महारानी!" महारानी भद्रा का हाथ पकड़, महाराज बोले—"रानी रुपाली एक प्रखर-यौवना रमणी से अधिक कुछ नहीं। वह महारानी का मान-वरण करने योग्य नहीं।"

"आप गढ़ी चम्पावत नगरी की बात कहते हैं, महाराज?...बहन रुपाली सम्पूर्ण आर्यावर्त्त की चक्रवर्त्तिनी साम्राज्ञी होने की सामर्थ्य और योग्यता रखती है। बिना तेज का सौन्दर्य इतना प्रखर-प्रचण्ड नहीं होता, महाराज!...और अन्याय तो उसे आप महारानी न बनाकर करेंगे। चन्दवंश का नाम चलता रहे, यह उत्तरदायित्व प्रथमतः मुझपर है, कि मैं इस राज-वंश की वरिष्ठा कुल-वधू हूँ। यही मेरे प्रति न्याय भी होगा।"

"लेकिन, तुम काली कुमाऊँ, पाली पछाऊँ की राज-परिषद-मान्य

---

1. गरम नहीं किया हुआ नवनीत।

महारानी हो, प्रिये ! तुम्हारे मान-स्थान का अपहरण, न जोशी दीवान सहन करेंगे, न प्रजा और न वाईस भाई वफोल ही, जो कि तुम्हें अपनी राजमाता कहते हैं।"

"इसका प्रबन्ध हो जाएगा, महाराज !" और महारानी भद्रा ने महाराज की निद्रिल-पलकों को अपने हाथों से ढांप दिया, कि कल्याणी कुल-वधू दूसरों के अदिन अपने आँचल में सहेजती है, कि अपने आँचल के आशीष-फूल औरों के माथे रखती है !

16

भँवरों, राजाओं और जोगियों की जात

"न्यौली…"

"रानी वा…"

"राजाजी नहीं आए ?"

"नहीं, रानी वा…!"

"झूठी है तू ! मध्यरात्रि हो चली। मेरा भँवरा मेरी वाँहों की परिधि से विलग, इतनी लम्बी अवधि तक नहीं रह सकता।"—रानी रुपाली अधमुंदे नयनों पर सदर्प अँगुलियाँ फेरती बोली—"देख, राजाजी, देली पर मत्था दिए, द्वार खोलने की प्रतीक्षा में होंगे, कि मेरे रूप का रसिया मुँह के बोल खो देता है।"

"भँवरों, राजाओं और जोगियों की जात और होती है, रानी वा ! जिस फूल बैठते हैं, उसी की पँखुड़ियों में प्राण देने का संकल्प करते हैं। जिस रानी की सेज सोते हैं, उसी के नाम का पुरुषत्व रखने की बात कहते हैं। जिस आसन बैठते हैं, उसी में समाधि लेने की बात सोचते हैं। पर, जहाँ एक फूल से दूसरे, एक सेज से दूसरी, एक आसन से दूसरे आसन गए—फिर उसी के हो रहते हैं, रानी वा !" न्यौली एक साँस में कह गई।

"तेरे मँगेतर को चढ़ता-हत्था, बढ़ता-वेतन दिलाऊँगी, न्यौली !" रानी रुपाली बोली—"शायद, तू ठीक कहती है। पर, मेरे लिए ऐसा न सोचना। मेरा भँवरा, मेरा राजा और मेरा जोगी···सत्य-प्रत्यक्ष की क्या, सपने में भी दूसरे फूल, दूसरी सेज, दूसरे आसन बैठने की बात नहीं सोच सकता !"

"राजाजी आज भद्रादेवी की सेज सोए हैं, रानी वा !" न्यौली बोली—कि, या लक्ष्यभेदी अर्जुन के बाण, या न्यौली के वचन ही होते हैं।

रानी रुपाली को जैसे नाग डस गया हो—"न्यौली !"

"सच कहती हूँ, रानी वा ! आज महारानी भद्रा सेजवती हैं। कल कोई दूसरी होंगी। बिना फूल-फूल जाए भँवरे को, बिना द्वार-द्वार जाए जोगी को और बिना सेज-सेज सोए राजा को कल नहीं पड़ती, रानी वा !"

"झूठी बहुत है, तू !" सहसा पूरी आँखें खोल, अपेक्षया संयत-स्वर में, बोली रानी रुपाली—"वारुणी की बान ढला हुआ, शीतल जल से संतुष्ट नहीं हो सकता, न्यौली !"

"वारुणी आँखों से देखकर ही, आँखों तक नहीं पहुँच जाती, रानी वा ! वारुणी नयनों की राह से नहीं, अधरों की राह से नयनों तक पहुँचती है ! और अभी राजा जी ने वारुणी देखी-भर है, रानी वा, उसकी बान नहीं ढले हैं।···" न्यौली अर्थ-भरी हँसी हँस दी, कि रानी रुपाली समझ

, मधु दिखाने-भर से भँवरा वश में नहीं हो जाता।

रानी रुपाली झूला अपने हाथों झुलाती, बोली—"तू सच कहती है, ली, कि नयन-देखे से नहीं, अधर-लगे से वारुणी की बान पड़ती है। र···और···तू यह भी सच कहती थी, कि तेरी गढ़ी चम्पावत नगरी एक नहीं, बाईस सूर्य तपते हैं!···"

*　　　*　　　*

"राजा जी···"

"नहीं आए, रानी वा!···" न्यौली झूला थामती बोली—"और अब आएँगे। जब दिशाएँ खुलने लगती हैं, तब सेज-सोए पुरुष की आँख लगने की वेला होती है, रानी वा!"

और न्यौली के अधरों पर एक अर्थ-भरी मुस्कान जल-परे की माछी-ी फड़क गई, कि रानी रुपाली की पलक-डोरों में आँसू झूला झूल गए, क या वन्द कमल-पाँखुरियों पर से विहान-वेला ओस-कन ही झरते थे, ा आज रानी रुपाली के आँसू ही झरे हैं···

कि, न्यौली बैन न बोली।

रैन करवट बदल गई।

17

चतुर्थी का चन्द्र और चोट खाई नागिन

एहो, कथा-रसिको ! रूपसी रानी रूपाली ने बाईस भाई बफौलों को एक झलक देखा था, कि तभी से चपला-चंचला-चटुलीका चित्त चलायमान हो गया था, कि आज की रात-वेला ऐसी चमारिन-जैसी चल पड़ी—अपने धरम के स्वामी राजा कालीचन्द का एकखण्डी-महल छोड़—बाईस भाई बफौलों के महल को, कि उसका चमार-चित्त चीलों का कलेवा बन जाए !

एहो, कथा-भँवरो !

गगन चतुर्थी-चन्द्र नहीं पर गढ़ी चम्पावत नगरी में, घड़ी रात-बीते एक चतुर्थी-चन्द्र कौन गगन उग आया, कौन दिशा जाएगा ?

रमौलिया (लोकगायक) बताएगा, कि एकखण्डी महल उगता है और

पश्चिम दिशा में, वफोल वन्धुओं के महल को जाता है।

चतुर्थी का चन्द्र, कि ऋतुवती तिरिया क्या करनी करेगी, क्या विधान रचेगी, रमौलिया वेचारा दो गास खाने, दो घूंट पीने वाला क्या जाने, कि तिरिया की गति-दिशा का ज्ञान धरती-धरमराज, गगन-देवराज को नहीं, कथा सुनने वालो!

और उस पर भी रानी रुपाली की गति-दिशा का अनुमान-भान? जिसके वैनों से थमी-वयार वहकती, सैनों से सूखी-घास महकती है।

एकखण्डी महल का चाँद कौन?

हरित विल्व-पत्र-सी नवोन्मेषिनी, पहली उठी तरंग, पहली उगी किरन; प्रथम वैन, प्रथम सैन-सी रानी रुपाली, कि चरण धर रही है, औरों के कान भँवरों का भनकना, चूड़ियों का खनकना कहाँ? मगर, दसों दिशाओं के वीस कान खुलते हैं, और दसों दिशाएँ क्या ललक रखती हैं—कि, (विधाता की मुट्ठी का साँप मुट्ठी के भीतर ही मरता है।) काश, हमें वीस कान और दिए होते!

पश्चिम दिशा कौन?

पूर्व की सौतेली, कि जो लाल पूर्व दिशा ने गोद खिलाए, पालना झुलाए—मर जाए स्वामी पश्चिम दिशा का—एक सन्ध्या, एक भोर निगल जाती है, कि सौत भली नहीं सपने।

पश्चिम दिशा में, किसका रहना?

पश्चिम दिशा में, महल वाईस भाई वफौलों का, कि वाईस गद्दों, वाईस तकियोंवाली एक सेज सोए हैं, कि जैसे वाईस फल एक डार फले हों, कि वाईस मोती एक साँचे ढले हों।

*　　*　　*

रानी रुपाली के चरण देहरी, कि खनक चूड़ियाँ, झनक-झाँझर और वफोल वंधुओं की टूट गई, कि या आँखें भोर की वयार लगने से, या

पायल की झंकार सुनने से ही उघड़ती हैं।

वफौलों की आँखें उघड़ीं।

बिना रन्ध्रों की बाँसुरी बन गए, कि बाईस दीपक हमारे सिरहाने आकर जला गए थे, कि शयन-कक्ष हमारा गगन नहीं, यह पूनम का चाँद कहाँ उग आया ? बिना स्वप्न की नींद भी आती है, यह तो सुना था, पर आज हम बिना नींद का स्वप्न देख रहे हैं !

"वफौल हो···" रानी रुपाली बोली, कि वह पहले जनम में शारदा-हाथ की वीणा रही थी, या न-जाने नारद-हाथ की, कि वह किस राग बजेगी, किस ताल झनकेगी, कि क्या मनोरथ बाँधेगी, क्या वचन बोलेगी, विधाता ही जाने।

"वफौल हो··" दूसरी बार जब रानी रुपाली भँवर-न्यौतार[1] वचन बोली, तो वफौलों ने सिरहाने-धरे जल-कलश में अँगुलियाँ डुबोईं, पलक-पाटलों से लगाईं—कि, सपने देखते हों, जाग जाएँ। प्रत्यक्ष देख रहे हों, तो पूछ पाएँ, कि कौन देश की माटी, कौन वंश की परिपाटी धन्य करती हो, कि गगन-चन्द्र फीका, मुख-चन्द्र नीका है।

"वफौल हो !···"

"कौन हो तुम सूर्य-कन्या-सी, भली हो ? और क्यों इस रात्रि-बेला हमारे कक्ष चली आई हो, कि हम वफौलों की नींद माखी का भनकना, पाँखी का कुनकना नहीं सह पाती।"

"वफौल हो ! सूर्य-कन्या ही नहीं, 'डोटी गढ़ी का एक सूर्य' कहलाती थी मैं, कि मेरे नाम से डोटी गढ़ी में दो सूर्य तपते थे, एक गगन-मढ़ी में, एक डोटी गढ़ी में !" रानी रुपाली बोली, "लेकिन···"

वफौलों ने 'लेकिन' के प्रति अपनी ओर से कोई जिज्ञासा प्रकट नहीं की, कि रानी रुपाली नयन-धनु टंकराती, मदन-शर फेंकती बोली, "लेकिन, गढ़ी चम्पावत नगरी में, न्यौली मेरी सखी सच कहती थी, एक

---

1. भँवरों को न्यौतने वाले।

नहीं—दो नहीं—वाईस-वाईस सूर्य तपते हैं !" और वह हँस पड़ी, कि या नशे में उन्मत्त शरावी के काँपते हाथों के स्पर्श से शराव की प्याली—और वह भी लवालव भरी—ही छलकती है, कि या वाँके-वैन वोलते, कटीले-सैन करते रानी रुपाली के अधरों ही हँसी फूटती है।

एहो, कथा के सुनने वालो !

रानी रुपाली के वैन-सैनों का स्वामी विना सींगों का वैल, विना सूंड का हाथी वन जाए, कि वाईस वफौलों की वाणी विना वोल हो गई है, हिया डोल गया है, कि पूछनी पूछ नहीं पाते हैं, कहनी कह नहीं पाते हैं।

"सुनो, वफौल हो !" रानी रुपाली चालिस-को-चौवालिस करती वोली—"आपकी काली कुमाऊँ में एक गीत कहते हैं, 'हैंस्यालू का गुना, हाई रे, त्वीमें माया के पड़ी—पड़िगे अनाघुना[1] ।'···ऐसी माया मेरी आप वाईस भाई वफौलों की सेज सो गई है, कि मैं गढ़ी चम्पावत के राजाजी कालीचन्दकी सेज छोड़, आपकी सेज सोने चली आई हूँ। सूर्य-कन्या कहा था आपने मुझे न ? मेरे तेज का वरण गढ़ी के वाईस सूर्य ही कर सकते हैं। दिए का पतंगा राजा कालीचन्द, अपने पंख जला लेगा, मेरी ज्योति धुँधली कर देगा।"

तो, ये ही गढ़ी चम्पावत नगरी की नई रानी देवी रुपाली हैं ? दीवानजी कहते थे, "जैसे विना पंख का पाँखी घोंसले-का-घोंसले में ही रह जाता है, ऐसे राजा कालीचन्द नई डोटियाली रानी रुपाली के एकखण्डी-महल में रह गए हैं, कि उन्हें राज-काज की सुध कहाँ ? साँझ-सूर्य का ढलना, भोर-सूर्य का उगना नहीं सूझता है।"

सच ही, राज-रानी रुपाली का रूप इतना ज्वलन्त है, कि इनकी रूप-परिधि से परे विश्वामित्र न जा पाते, कि एक मेनका के सैन-वैनों में जुग-जुग की तपस्या टूट गई। हमारी राजरानी रुपाली सौ मेनकाएँ एक,

---

1. ('हैंस्यालु का गुना' एक प्रतीकात्मक तुक-द्वन्द्व है।···) हाय, प्रिय ! तुझसे प्यार क्या हो गया, असीम (अन्धाधुन्ध) हो गया है।···

सी मेनकाएँ एक नयन रखती हैं, कि हम धैर्य-धरम के धनी वफोलों की वाणी भी चोर-सी कांपती, जार-सी[1] जरजराती है।... हमारे राजा-महाराज कालीचन्द तो दीपक को पतिंग, फूल को भँवर हैं।

धरम रह जाए धरती-माटी का, सत रह जाए वंश-परिपाटी का, कि पुण्य-सूर्य डूबे नहीं, पाप-चन्द्र उगे नहीं। बाईस भाई वफोल बोले—"प्रणाम लो हो, राजमाता !... कानों से सुना था, आँखों से देख, धन्य हो गए हैं, कि एक आपसे हमारी गढ़ी चम्पावत नगरी का सिंहासन चार दिशा नामधारी रहेगा, कि गगन-देवराज भी हमारे महाराज की दाल-रोटी में नियत रखनेवाला बनेगा !...कि, ऐसी रानी जो उसके इन्द्र-लोक में होती, तो वह इन्द्राणी को द्वार का पहरा भरने, शीश को चँवर झुलानेवाली बनाता, कि एक दासी का वेतन बच जाता।..." और वफोलों ने हाथ जोड़ दिए, कि उनका हँसना, गोदी के बालक का किलकना एक होता है।

रानी रुपाली की हँसी को चींटियाँ लग जाएँ, कि जौ की शराब तिब्बती भोटिए ढालते हैं और भ्यांकुरी-स्यांकुरी पातलों (सघन वनांचलों) की जड़ी-बूटियों की शराब हूण लोग—पर, वैन-वारुणी, सैन-शराब एक रानी रुपाली ही ढालती है। हँसकर बोली, "गगन-देवराज एक वज्र के स्वामी कहलाते हैं, वफोल हो—कि, आपसे राजाजी बाईस वज्रों के स्वामी कहलाते हैं !... एक वज्र के स्वामी इन्द्र की रानी शची इन्द्राणी बताई गई है, कि बाईस वज्रों के कथुवा[2] स्वामी की महारानी भद्रा को सेज-सोई देख आई हूँ।...मैं बनूंगी, तो बाईस वज्रों की एक बिजली बनूंगी !..."

वफोल मुंह ताकते रह गए।

* * *

---

1. चरित्रहीन। 2. तथाकथित।

एहो, कथा के लाड़लो !

तुम्हारे घर के आँगन में, दूधमुखी-बालक रेशमी-डोर का पालना झूलता और तुम्हारे गाँव के सरोवर में सूर्यमुखी-कमल फूलता रहे, कि चंचला, चपला, चटुली रानी डोटियाली रुपाली के द्वार का पहरुवा सो जाए, गोठ का बैल खो जाए, कि हट पापिनी, चार हाथ दूर, बारह पत्थर बाहर जा, कि क्या दाएँ सैन किए, क्या बाएँ वचन बोली—"सुनो हो, मेरे प्यारे बाईस भाई बफौलो ! कली भँवर के पास, ज्योति शलभ के पास नहीं जाती, कि एक आप बाईस भाई बफौलों के प्यार में बावली मैं हुई हूँ, कि नारी के तीन कर्म भुला आपके महल चली आई हूँ। आप पूछोगे, बफौल हो, कि नारी के तीन कर्म कौन ? कर्म तीन, कि एक उनमें से पुरुष के पीछे बोलना। पुरुष से पीछे खाना, दूसरा—कि, तीसरा पुरुष के पीछे चलना।...पर, मैं क्या करूँ, कि मेरे नयनों को लाज बैरी बन गई है, कि आपके सामने पहले बोल बोल रही हूँ। घूंघट मेरा किस बयार उड़ गया है, शरम मेरी किस धार बह गई है, मैं न जानूँ। जानें ब्रह्मा, कि न एक वन में बाईस देवदारों-जैसे आप बाईस भाई बफौलों की रचना की होती और न मैं एक लता बनती, न बाईस वृक्षों का आधार खोजती, कि न मेरे मन यह ललक जागती, कि बाईस दीपकों की एक बाती बनकर जलूँगी, बाईस वृक्षों से एक लता बन लिपटूँगी !..."

बफौल धनी धरम के, बफौल मानी सत् के—पाप के वचन सुने, कान अँगुली धरी, जीभ दाँतों दबाई, कि पाप के वचन कहीं धरती-माटी को बंजर, पितर-परिपाटी को कलंकित नहीं कर जाएँ।

हाथ जोड़ लाए, सिर झुका लाए, "सुनो हो, हमारी राजमाता ! माँ हो हमारी धरमकी, दूध-धार छोड़, रक्त-धार क्यों देती हो, कि पाप के वचन कान सुनते हैं, सिर झुकते हैं : ऐसे अन्यायी वचनों से धरती से धरम उठ जाता है, गगन बादल नहीं [illegible]ते हैं, माटी अँकुर नहीं फूटती है। जनम-माता एक हमारी बफौलीकोट में रहती हैं, कि धर्मपत्नी एक लली दूधकेला भी हमारी बफौलीकोट में रहती है, कि काली कुमाऊँ,

पाली पछाऊँ में और जो चूड़ियाँ खनकती हैं, सो हमारी वहनों की, जो झाँझरें झनकती हैं, सो हमारी माताओं की !··· कि, वहनों के हाथ चूड़ियाँ रहेंगी, हम अपने हाथ राखी वँधवाएँगे; माताओं के चरन छुएँगे, आशीर्वाद लेंगे··· सो, सुनो हो राजमाता, लाज आपकी रह जाए, धरम हमारा न डिगे—आज्ञा दो, चाकरी वजा लाएँगे। पर, पापी वचन न बोलो, कि ऐसे वचनों से नारी का सत्, पुरुष का धरम कलंकित होता है।"

एहो, जिस वज्र ने गिरना हो, डोटीगढ़ी में गिरे, कि जहाँ की रानी रुपाली उलटी-धार वहती है, उलटी-राह चलती है।

समझाने से गोदी का वालक रोना, खाट-पड़ा वुड्ढा कुड़ना और कमजात घोड़ा अड़ना छोड़ देता है, पर रानी रुपाली की डोटीगढ़ी में दूब हरी, गोद भरी न हो, कि शीतल जल डाला और भभक उठी—ऐसी सत्यानाशिनी आग और कहीं नहीं देखी। 'माँ' कहके, धरम के धनी वफीलों ने शीश झुकाए, पर पातर वन गई, कि सिर पर आँचल, वक्ष पर चोली न रखी। ऐसी तिरिया नहीं देखी, कि आज देखी, तो कान पकड़ते हैं, कि और न देखनी पड़े, कि ऐसी पापिनी तिरिया का मुँह देखने से 'गौ का कसाई, माँ का हरजाई' वनने का पातक लगता है।

शुद्धि, शुद्धि !

राम, राम, शिव, शिव !!

देवशुद्धि, पितरशुद्धि !!!

"सुनो हो, वफील, मेरे प्यारे !···" रानी रुपाली में मेनका-रम्भा ने अवतार लिया, कि गोल्ल-गंगनाथ तो और नारियों में भी अवतार लेते थे।[1] लाज ढँकनी केले के पातों से भी ढँक ली जाती है, कि रानी

---

1. गोल्ल-गंगनाथ लोक-देवताओं का जिन पुरुष या नारी-विशेषों की देह में अवतार होता है, उन्हें लोक-भाषा में 'डँगरिया' कहते हैं। सम्भव है, पहले इन लोक-देवताओं ने डँगरियों (ग्वालों) के ही शरीर में अवतार लिया हो !

रुपाली ने अपना रेशम की अँगिया, मखमल की घघिया से ढँका तन निर्वसन-सा कर लिया, कि उसकी विजन-वल्लरी-सी-देह-यष्टि का क्या कहना—कि, अंग-अंग का लावण्य और, लोच और, कि मयूर ने अपने पंख न देखे, आप ही नोंच चोंच से लगाता। फूल ने अपना पराग नहीं देखा, पंखुड़ियों से निगल जाता, कि जहाँ फूल भँवरे हो जाते, तो वहाँ भँवरे क्या मुँह ले जाते ?

गंग-धार देखी, महाकाल शिव को राजा भगीरथ की तपस्या का ध्यान न रहा, कि तिरिया के नाम की तितपाती[1] भी बुरी होती है, कि जिसे वकरा खोज-खोज खाता है, सिर धुनता रह जाता है !

पर, धन्य-धन्य कहता हूँ, अपने बाईस भाई वफौलों को, कि उनके सत्-धरम की पावन-कथा द्वार-द्वार गाऊँगा, उनका जस बारह कोस फैलाऊँगा, अपना बारह पेटों का कुटुम्ब पालूँगा[2] ।···ऋषि-मुनियों को भारी रानी रुपाली ठाड़ी रही। अंगार पचा गए, विष पी गए, कि सत् रह जाए वफौलीकोट की धरती-पार्वती का, कि उसकी कोख कलंकित, दूध-धार अपवित्र न हो।

रुपाली रानी नागिन बनी, पास सरक आई—"सुनो हो, वफौल मेरे प्यारे !···बात आपने कही, कि एक ऋषि विश्वामित्रों की कथा सुनी थी—आज बाईस विश्वामित्रों को देख रही हूँ !"···और खिलखिलाकर, अट्टहास कर उठी, कि जैसे झरण-चट्टान[3] से प्रचण्ड जल-धार हर-हर करती गिर पड़ी हो।

बोली, "आई को ठुकराके, गई के नाम पर नयन गीले, चरन ढीले

---

1. एक तीती घास, जिसे वकरा खाता है, खोज-खोज कर, पर पचा नहीं पाता।

2. कुमाऊँ में रमौलिया जिस घर भी कथा कहता है, उस घर का स्वामी उसे भोजन-वस्त्र और रुपये देता है।

3. जहाँ से झरने के रूप में धार नीचे गिरती है।

करना ठीक नहीं, वफौल मेरे प्यारे ! वारुणी और तरुणी में इतना ही अन्तर होता है, कि एक आँखों के आगे आने पर बावला बनाती है, दूसरी आँखों से दूर चली जाने पर।

"आज मैं ऋतुदान माँगने आई हूँ, कि चौथा दिवस था, चौथी रैन है। चतुर्थी की चाँदनी को ठुकराने वाला पर्वत अँधेरा रह जाता है, कि उसमें कभी फूल नहीं फूलते। और चौथे दिवस की ऋतुवती के प्यार को जो पुरुष ठुकरा देता है, उसे सात जनमों तक नारी के नाम की लकड़ी भी नसीब नहीं होती, कि ऋतुवती के प्रणय को ठुकराना, भूखी गाय के मुंह से हरी घास छीनने के बराबर है !"

वफौल विचलित नहीं हुए, "सुनो हो, राजमाता ! पहली बात, कि हम विश्वामित्र नहीं हैं, कि एक लली दूधकेला पूनम की चाँदनी-सी बाईस पर्वत उजाला करती है, कि धरती-धरमराज, गगन-देवराज के घर एक रात की, लेकिन हमारी वफौलीकोट में बाईस रातों की पूनम होती है। और हमारे मन अँधेरा, तन कलुष नहीं रहता। दूसरी बात—गणेश-चतुर्थी का चन्द्र देखने से कलंक-भागी होना पड़ता है, यह सुना था, पर आज प्रत्यक्ष देख रहे हैं, कि तुम चतुर्थी का चन्द्र बनके हमारी धरती-माटी, वंश-परिपाटी का नाम स्याही से लिखवाने पर तुली हो, राजमाता ! तीसरी बात—आपके सिर पर मयूर-पख के मुकुट, सुनासार[1] के छत्र-जैसे महाराज कालीचन्द हैं, कि आप बिना आधार की लता, बिना दीपक की बाती नहीं हैं ! चौथी बात—गाय को अपवित्र वस्तु खाते नहीं देखा, कि उसके मुंह की हरी घास नहीं छीनते।'' जो गाय मुँह-आगे की हरी घास छोड़के पराये खेत मे मुंह डालने दौड़ती है; माता कहलाती है, पाप सिरजती है—उसे कसाई को सौंपने से भी पाप नहीं है। सो, हे राजमाता ! महाराज कालीचन्द के कक्ष जाओ, कि जब चन्द-वंश का धागा आगे बढ़ेगा, हम बाईस भाई वफौल गगन-दुन्दुभि, मगन नगाड़े बजाएँगे।"

---

1. सोने से बना हुआ।

और वफ़ौलों ने सिर झुका लिए, कि चन्दन के काठ को नागिन की फुंकार नहीं व्यापती है, कि समुद्र मगर की हुँकार से अपनी मर्यादा नहीं छोड़ता है।

पर, ऐ हो, कथा के सुनने वालो !

···गुरु-पितरों ने लाख की यह बात आपके हिस्से भी लगाई ही होगी, कि जो वो कह गए, कि दूध से साँप का जहर बढ़ता है, घी से आग की भूख बढ़ती है, झूठ नहीं कह गए, कि पितरों की बात, आँवले का स्वाद विरले ही समझ पाते हैं !

चट्ठुली रानी डोटियाली को ठण्डी छाँव, दानी गाँव न मिले। नकटे की नाक में पेड़ उगा, काटने को कहा, तो छाया में बैठने का आसरा बताने लगा। ··कि, बिना विष-दन्त टूटे नागिन वश में नहीं होती।

वचन उसके सात हाथ गहरे गड्ढे गाड़ आऊँगा, सात परतें मिट्टी दबाऊँगा, सात हार (पंक्ति) पत्थरों की दीवार चुन दूँगा, कि ऐसा न करने से उसके पापी वचन भाँग-धतूरे के वृक्षों-से पनपेंगे और अटारी-अटारी का दिया बुझाएँगे, पिटारी-पिटारी का वैभव चाट जाएँगे।

पापिनी चपला-चंचला क्या बोली, "दुधार गाय की लात सह लेनी पड़ती है, सो वफौल मेरे प्यारे, आप लोगों के वचन भी सह लेती हूँ, कि तुम्हारे कण्ठों को बाईस मोतियों का हार बन जाऊँगी, कि जो गले हाथ लगाएगा, वही अपने गले पाएगा। सुनो हो, वफौल मेरे प्यारे ! कली-कली, लली-लली[1] में अन्तर होता है। एक अपनी लली दूधकेला का मुँह देख आए हो, एक मेरे पाँवों की तलियाँ देख लेना। एक वफौलीकोट की अपनी सेज सो आए होगे, एक मेरी सेज सोकर देखना, कि वन-वन के वृक्ष एक नहीं, वृक्ष-वृक्ष के फ़ल एक नहीं और फल-फल का स्वाद एक नहीं।···

"मेरा प्यार न ठुकराओ, वफौल मेरे प्यारे !···कि, तुम्हारे नाम के बाईस दिये अपने महल में जलाऊँगी, तो बाती उनमें एक रहेगी। तुम्हारे

---

1. कन्या।

नाम का एक घाघरा पहनूंगी, पर उसके पाट (घेरे) बाईस होंगे। एक चोली पहनूंगी, कि सात रँग इन्द्र-धनुष के भी होते हैं, मेरी चोली में बाईस रँग होंगे।···तुम्हारे नाम पर, सिर पर बाईस सिन्दूर-रेखाएँ भरूँगी। बाईस लटियां करूंगी, बाईस फुन्ने लगाऊँगी, कि लटी-लटी का गुंथन, फुन्ने-फुन्ने का गुम्फन और होगा। और. ऐसी लटियों को बाईस कंघियां लगाऊँगी, कि सात-जात के तेल आपकी गढ़ी चम्पावत नगरी में होते हैं, पन्द्रह जात के अपनी डोटीगढ़ी से मँगाऊँगी। रानी रुपाली का वचन खाली नहीं जाएगा, वफौल मेरे प्यारे! कि, बांसुरी के सात रंध्रों से, सितार के सात तारों से सात-सात अलग-अलग स्वर निकलते हैं, मगर मेरे कण्ठ की बाईस पुकारों से एक ही स्वर निकलेगा—'वफौल मेरे प्यारे, वफौल मेरे स्वामी!' बाईस धातुओं के बाईस पिंजरे तैयार कराऊँगी, और उनमें चम्पावत के रनकुरी-मनकुरी, हिमालय के स्याकुरी-स्याकुरी वनों के बाईस जात के तोते पालूंगी। पर, मेरे बाईस पिंजरों के बाईस तोते भी एक ही बोल रटेंगे—'वफौल मेरे प्यारे, वफौल मेरे स्वामी!' सो, मेरे मनके स्वामी! आज मुझ अकेली को बाईस रागिनियों की एक वीणा, बाईस स्वरों की एक बांसुरी बनने दो, कि मैं बाईस सेजों की एक सोने वाली, सेज फूल बिछाऊँगी, देह सुवास फैला जाऊँगी।··"

*   *   *

बजते-बजते वीणा की झंकार नहीं थमती,

बहते-बहते पनार की धार नहीं थमती,

और कहते-कहते रानी रुपाली की बात नहीं थमती, कि उसके इन्द्रों को नैवेद्य, पितरों को पिण्ड नहीं मिले।

पर्वत के ऊँचे शिखर हिलते हैं, खुद गिरते हैं। पर, जब तरुणी स्त्रियों के सुघड़ कपोल कपोत-पंखों की तरह फड़फड़ाते हैं, स्तन कुर्ती-अन्दर झूलते हैं, पुरुषों का पतन होता है।

रानी रुपाली नागिन-सी बलखाती, विष-वमन करती रही—"वफौल मेरे प्यारे, अपने महाराज कालीचन्द की जोट[1] किसी और तिरिया से बाँधना, कि आकाश से गंगा गिरी, तो उसे किसी हूण ने नहीं महाकाल ने धारण किया था, कि आई तो वह राजा भगीरथ के लिए थी, पर एक साल तक महाकाल ने घर धर लिया—कि, जब देवों के देव महादेव को इसका पातक नहीं लगा, तो राजाजी कालीचन्द के लिए आई मैं, मुझे अपनी सेजा-सुलाने से आपको कैसे पाप लग सकता है ? वफौल मेरे स्वामी, कालीचन्द अन-बँटा रस्सा, अन-बना बकरा है। मैं फूल सहस्र-पाँखुरी मन-भर पराग—राजाजी बिना गुन-गुन के भँवरे हैं। मैं ज्योतिर्वान अग्नि-शिखा हूँ, राजाजी गीली लकड़ी हैं, कि धुआँ छोड़ते हैं, आग नहीं पकड़ते।… ऐसे राजाजी कालीचन्द के साथ मेरी जोट कैसे निभ सकती है ? सो, आज आप मुझे अपनी सेज सुलाएँ, वफौल मेरे स्वामी, कि एक बीज से उगे वृक्ष को बाईस फल लगते होंगे, मैं बाईस बीजों से एक फल तैयार करूँगी। वह बाईस सूर्यों का एक सूर्य, बाईस वज्रों का एक वज्र कहलाएगा। सुनो हो, वफौल मेरे प्यारे ! द्वारिका-नगरी में कृष्ण ग्वाले की सोलह हजार रानियाँ थीं, कि उन सोलह हजार रानियों के नाम पर वह अवतारी भगवान् कहलाया। गढ़ी चम्पावत नगरी में आप बाईस भाई वफौल मेरी सेज के सोने वाले बनोगे, कि सारी काली कुमाऊँ, पाली पछाऊँ में एक अवतार मेरा भी कहलाएगा !…"

"हट पापिनी ! चार हाथ दूर, बारह पत्थर बाहर जा !" वफौल, मेरी कथा के स्वामी, कमर से कटार निकाल बोले, "इतने बोल बोल गई है, कान अपने नहीं रह गए हैं, और एक वचन बोलेगी, या गति सूर्पनखा की हुई थी, या तेरी होगी। दूध-धार देनी थी, रक्त-धार देने आई है, कि ऐसी नारी-गाई का कसाई खुद बनने में भी पाप नहीं।…"

और बाईस कटारें आगे बढ़ आईं, कि डोटियाली रानी रुपाली गात

1. जोड़ी।

ग ढँकना, केश का सँभालना विसर गई और पापिनी यह गई, वह गई, कि वफोलों के कक्ष से एक सांस में वाहर आई।

और, आंगन में वाईस लोट लेकर, वाईस वार उल्टी हथेली से माथा ठोक गई—

"हूँ मैं डोटीगढ़ी की रुपाली—तुम वाईस भाई वफोलों का वंश-नाश, बीज-नाश कराके ही अन्न-दाना, पानी-घूंट ग्रहण करूँगी ! नहीं तो, सब जलती चिता कूद मरते थे, मैं ठण्डी-चिता आसन लगा मरूँगी !"

* * *

ऐहो, कथा के सुनने वालो !

वफोल मेरी कथा के धनी विसर गए, पर तुम न विसरना, कि या तो नागिन को चोट ही नहीं मारनी, या मारनी, तो अधमरी कर नहीं छोड़नी, कि चोट खाई नागिन और प्रताड़िता तिरिया—वदला लेना, इनमें से कोई भी नहीं भूलता !

18

चपला-चंचला-चहुली का तिरिया-चरित्र

"यों वस्त्र हीन, विना जलकी मीन-सी छटपटाती इस अधराती कहाँ से लौटी हो, महारानी ?" द्वार खड़े-के-खड़े महाराज कालीचन्द ने प्रश्न किया, कि रानी रुपाली का देहरी-भीतर का चरण भीतर, वाहर का वाहर ही रह गया।

महाराज वोले, "मैं न आता तुम्हारे महल में; पर वड़ी महारानी ने अपनी शपथ देके भेज दिया, कि तुम ऋतुवती हो···और मैं चला आया, कि शायद, तुमसे ही चन्द-वंश ने चलना है।····कवसे मैं प्रतीक्षाकुल खड़ा हूँ यहाँ। न्यौली से पूछा, न वता सकी। मँझरात घर छोड़, वाहर गई नारी पुरुष की प्रतिष्ठा-नौका मँझधार डुवोती है, रानी ! तुम कहाँ अपनी

कार है, चन्द्रवंश को !!...और धिक्कार है, महाराज, आपको, कि
के रहते मेरा सतीत्व लूट लिया गया, और मैं कसाइयों की गाय बनी
खती रह गई, कि जहाँ मेरे आँसू गिरे हैं—हूँ मैं पतिव्रता नारी,
आपके नाम की सेज सोने वाली !— वहाँ राजा इन्द्र बिना मेघ के
गिराएँगे, कि वह धरती ही धँस जाएगी !"

महाराज कालीचन्द को धक्का मारकर उधर करती, दाँतों को
ाती, रानी रुपाली शेरनी-सी विफर बोली—"बड़े कापुरुष हो,
ाजी, कि थू है तुम्हारे खड्ग को, मुझे दिखाते हो ? पर, तुम्हारी
व्रता रानी की पवित्रता को जिन्होंने जूठन बनाकर रख दिया, उन
यों के लिए तुम्हारे खड्ग की धार कुन्द हो गई ?...इससे अच्छा
मेरे पिताजी मुझे किसी मछुए से ब्याह देते, तो वह उस नदी में
नहीं रहने देता, जिसका पानी मेरी मणि के चोर पीते होते।..."

महाराज कालीचन्द करनी बिसर गए, कहनी भूल गए, कि पुरुष के
य को स्त्री के वचन-बाण जब बेधते हैं, तब बिना घाव की पीर, बिना
की जलन होती है।

खिसियाए-स्वर में, महाराज कालीचन्द बोले, "और वचन न बोलो,
र न बाण मारो, रानी मेरी मनकी प्यारी ! मैं नहीं जानता था, कि
हारे साथ 'बिल्ली ने दबोचा चूहे को' वाली हुई है। सुनो, मैं भी
धारी, खड्गधारी राजा कालीचन्द हूँ, तो जिन्होंने तुम्हारे रूप को,
ीत्व को राहु-केतु लगाए हैं, उन्हें कसाइयों से कटवाऊँगा, दुकानों में
वाऊँगा। बकरी का मांस यहाँ जिस भाव बिकता है, उससे आधे
ों में, तुम्हारे रूप-यौवन के वैरियों का मांस कुत्ते-चीलों में
कवाऊँगा ! सुनो हो, रानी रुपाली ! तुम मेरी, गढ़ी चम्पावत नगरी,
ी कुमाऊँ, पाली पछाऊँ की महारानी बनने जा रही हो कल। व्यर्थ
पर कोप न करो, हृदय न बेधो, कलेजा न चीरो, कि जिसने तुम पर
दृष्टि, पापी अँगुली उठाई है, उनकी बोटी चीलों से नुचवाऊँगा
डी कुत्तों से चबवाऊँगा ! कोप शान्त करो, वैरियों के नाम बताओ,

के उन नामों को धरते समय ब्राह्मण की, और उन पापियों की कपाल-पाती लिखते समय विधाता की मति भ्रष्ट हो गई होगी !···सुनो, मेरी महारानी, तुम्हें चिता जलने, डूब मरने की क्या पड़ी है ? कसाई के बलात् छूने से, गौ अपवित्र नहीं होती। चोरी से गो-मांस देने से, ब्राह्मण पतित नहीं हो जाता ! तुम्हारे रूप के तस्करों को मैं कल बीच-बजार बिना अस्थि-चर्म का करवा दूंगा। तुम्हारे कलंक का साक्षी भँवर-पतिंगा भी मेरी काली कुमाऊँ, पाली पछाऊँ में नहीं रह पाएगा ! फिर, तुम्हें भय क्यों ?"

रानी रुपाली आँसू भर लाई, हाथ जोड़ लाई, "महाराज मेरे, मैं तुम्हारे चरण की फूल-पाती, अटारी की दीप-बाती बनूंगी, कि जो सपने में भी पराए पुरुष का स्मरण-स्पर्श किया हो, मेरा यह शरीर चील-कौओं को प्यारा हो जाए !·· पर, महाराज ! बुद्धि को बारह हाथ पीछे न छोड़ो। यदि उन पापियों (हाय, राम-राम ! हाय शिव-शिव ! उनका नाम क्या आता है, मुँह में अंगार भरे लगते हैं,) को बीच बाजार में आपने मरवाया, तो क्या बात न फैलेगी महाराज ? धूप की सुवास कक्ष और नैवेद्य की मिठास मुँह तक ही रहती है, पर कलंक की बात तो बयार-सँग डोलती, पनार-सँग बहती फिरती है, कि 'जस एक, अपजस अठारह कोस' कह रखा है !···मेरे दुश्मनों का तो आज रात-ही-रात में वंश-बीज नाश होना चाहिए, तब मैं अन्न-दाना, घूंट-पानी ग्रहण करूँगी, नहीं तो, मेरे जिये का धरम क्या ? मेरी ओर से आपकी महारानी बने कोई बिल्ली, गद्दी पर बाएँ बैठे कोई चिड़िया !···सुनो हो, महाराज ! आपकी ही कुमाऊँ का एक गीत है, 'दूदी में को गाज, आपुण जैं नसणा ऐगे, कवा भैजो राज।'[1] और हमारी डोटीगढ़ी में भी कहते हैं, 'बिन पाक्ये कोदा की रोटी, हाथ लाया टुटन्याई, चन्द्र लाग्या छुटि

1. अपना अन्त आ गया, तो राज भले ही कौवा करे फिर।

जान्याई, तिरिया नै छुटन्याई ।' "[1]

"वात तुम इष्ट-मान्य, पितर-मान्य कहती हो, महारानी !" महाराज कालीचन्द प्यार करते बोले, "अब तुम नाम दुश्मनों के यमराज के यहाँ भेजो । उजाला होने तक, उनके नाम की राख भी नहीं रहेगी ।"

"सुनो हो, महाराज !" रानी रुपाली स्वर साधकर बोली, "वैरी मेरी पावनता और आपकी प्रतिष्ठा के और कोई नहीं—आपके चाकर वाईस भाई वफौल अन्यायी हैं, कि गाय मैं वाईस कसाइयों की बन गई ।"

"वाईस भाई वफौल—गढ़ी चम्पावत की आन-वान के वाईस प्रहरी वफौल ?" महाराज को पालतू कुत्ता काट गया—"उन्होंने तो आज तक कभी राज-रानियों के नाम की दासियों पर भी कुदृष्टि नहीं डाली, रानी···महरानी ! और कोई होंगे, अपनी माँ की दूध-धार, धरती की अन्न-वाल कलंकित करने वाले, रानी···वफौल मेरे वीर नहीं होंगे । और कोई होंगे, वफौल नहीं होंगे, महारानी ! अँधेरी रात में तुम्हारे नयन धोखा खा गए हैं, कि गाय पर दूध की चोरी का इलजाम आज तुमसे लग रहा है !"

महाराज कालीचन्द अपनी कनपटियाँ हथेलियों से दावे, लुटे यात्री-[illegible] वैठ गए, "और कोई पुरुष के नाम का भँवरा भी हो सकता है, रानी [illegible] महारानी मेरी !···पर, वफौल मेरे वीर नहीं हो सकते, कि उनके [illegible] जनम-माता एक वफौलीकोट में है, हजार धरम-माताएँ काली कु[illegible] में हैं, कि तुमको डँसने वाले नाग कोई और, लगने वाले राहु-केतु [illegible] और होंगे । फूल तोड़ने का इलजाम पराग, सितार तोड़ने का इ[illegible] राग पर मन लगाओ, रानी···महारानी रुपाली !"

विसरी-वान, वाएँ वचन लौटा वाई रानी रुपाली—"दलवा[illegible]

---

1. चन्द्रमा को लगा दाग छूट जाता है, पर नारी को [illegible] छूटता ।

के चरण छू लेना, अबला नारी को जूती दिखाना, कायर पुरुषों का यही तो स्वभाव होता है, राजाजी, कि जूती मारने वाले को जौंलहाथ[1] करते हैं, जौंल हाथ करने वाले को जूती दिखाते हैं !...एहो, राजाजी ! कटोरे का दूध घरवाले ढड्डुवे[2] पी गए, पड़ौस की बिल्लियों पर कैसे इलजाम लगाऊँ ? बगीचे की फूल-पाती घरवाले बोकिये[3] नष्ट कर गए, वन के वानरों पर किस मुंह से आरोप लगाऊँ ?...केवल इसलिए, कि पापी बफौलों के नाम से ही आपका नाड़ा ढीला, गात सुरसुरा होने लगता है ? ये लो हो, राजाजी ! पहन मेरा घाघरा, पहन मेरी चोली-चूड़ियाँ, अपने एकखण्डी महल बैठे रहो, कि ऐसे कायर राजा का मुँह देखने से सूरज उजाला देना छोड़ देगा, बादल बिना बरसे लौट जाएँगे !..."

जैसे बदली एक बार जोर-जोर से गरजती है, फिर मायके से ससुराल को जाती बहू-बेटी-सी रो पड़ती है—एक बार गरज के, रानी रूपाली जार-जार रोने लगी—"महाराज मेरे, आपके चरण की माटी, आपके प्यार की पाती बन जाऊँ मैं।...मैंने बफौल पापियों से कहा था, 'बफौल वीरो, वय से छोटी हूँ, सो बहन मान लो। आन-मान से बड़ी हूँ, राजमाता मान लो ! पर पापी वचन न बोलो, कलंकी हाथ न छुओ, कि मैं एक महाराज कालीचन्द के नाम की हूँ ! औरों के देखे, औरों के छुए से, सब जलती चिता मरते हैं, मुझे ठण्डी चिता आसन लगा मरना पड़ेगा।... पर, हायरे, राम-राम ! हायरे, शिव-शिव ! मर जाए, बफौलों का नाम-लेवा, काठ-देवा ! वचन क्या बोले, जीभ उनकी नहीं कट गई, कान मेरे नहीं फूट गए, कि मैं फटी हुई धरती, खुदा हुआ गड्ढा खोजने लगी अपने लिए—'सुन प्यारी रूपाली, एक राजा कालीचन्द...बिना गुनगुना का भँवरा, बिना रस का रिखू[4] ! बिना तेल का दीपक, बिना तार का सितार, कि क्या कली बन खिलोगी, मिठास या मोद, दीपक या ज्योति दे सकोगी ? और क्या

1. प्रणाम। 2. बिल्ले। 3. बकरे। 4. गन्ना।

तार-सी झनक, पायल-सी खनक सकोगी ?···एक हम बाईस भाई बफौल हैं, कि सारी काली कुमाऊँ, पाली पछाऊँ के बिना छत्र के सम्राट्, बिना मुकुट के राजा हैं, कि राजा कालीचन्द तो हमारी मुट्ठी को फूल, हमारी हथेलियों को सुरती है—जब चाहेंगे, मसल कर रख देंगे !' काल की हथेली को सुरती-चूना, कालिका के मुंह को पान-बीड़े हो जाएँ, बाईस भाई बफौल पापी !" कमर की लोच स्कन्ध, स्कन्धों की लोच कमर तक लाकर, रानी रुपाली बोलती गई, "वैरियों के नाम का काला चरेवा[1] न रहे किसी के गले। बोले, 'सुन हो, प्यारी रुपाली ! तुम्हें हम बाईस भँवरों की एक कली, बाईस रसिकों की एक लली बनाकर रखेंगे, कि एक तुम बाईस सेजों की स्वामिनी बनोगी ! का-पुरुष कालीचन्द को तो हम तुम्हारे हाथ मेंहदी रचाने, तुम्हारे शीश को चँवर झुलाने वाला बनाएँगे, कि नाम उसका, बदल कर, कलुवा चाकर रख देंगे !' महाराज मेरे, मैं हाथ जोड़ रही थी, धरती धरमराज, गगन देवराज को—या फाँसी बफौलों के, या मेरे गले पड़े, या वज्र बफौलों के, या मेरे सिर पर गिरे, कि या पापी न रहें, या पाप का भागी न बचे।·· अब मेरी राह छोड़ो हो, महाराज ! आपके चरण की धूल माथे लगा, ठण्डी चिता आसन लगा मरूँगी। इस लोक आपको पाकर, खो दिया। उस लोक खोज-खोज अपना बनाऊँगी, कि सतियों में या नाम सावित्री का ही आता है, या मेरा ही आएगा !···"

एहो, कथा के सुनने वालो !

तिरिया के वचन, चोरों की शपथ का भरोसा कभी न करना, कि एक बावला राजा कालीचन्द भरोसा कर गया, कि लगी आग से सभी जलते थे, सुनी आग से जल गया—अंगार-सा दहक, बयार-सा बहक गया।

एहो, बयार जब बहकती है, फूल-पात का नाश करती है और जब राजा बहकता है, राज-पाट का नाश करता है !···चंचला-चपला-चटुली

1. मंगल-सूत्र।

रानी रुपाली के तिरिया-चरित्र के मकड़जाले में फँसे राजा कालीचन्द ने खड्ग हाथ ले, शपथ महाकाल की ली—"हूँ जो मैं चन्दवंशी राजा कालीचन्द, बाईस भाई बफौलों के नाम की बाईस मुट्ठी खाक अपनी काली कुमाऊँ में नहीं रहने दूंगा ! उनके वंश, बीज की साक्षी मक्खी भी बफौलीकोट में जीती नहीं रह पाएगी !…"

19

कथा-स्वामियों के नाम का गंगा-जल

इस चन्द्रमुखी रात्रि-वेला में—

वन की पाँखी डार, घर की माखी दीवार-बैठी सोई है···

इस सुखिया वेला, दुखिया एक मैं हूँ।

अपनी कथा के स्वामी बाईस भाई बफौलों के नाम पर, मैं रमौलिया रक्त-आँसू भर लाता हूँ, गंगा-जल और तुलसी-काठ चढ़ाता हूँ, कि चंचला-चपला-चटुली रानी डोटियाली की चिता जलती, तो मैं मंदिर दिए जलवाता, घर बताशे बँटवाता—पर, महल जल रहा है, मेरे कथा-धनी बाईस भाई बफौलों का, कि कलेजा फटता है, मुँह को आता है।···

अंन्यायी राजा कालीचन्द के मशालधारी सिपाहियों का सरदार मर जाए, बफौलों की नींद को कभी न टूटने, साँस को कभी न चलने

वाली वना गए, कि उनके नाम की राख भी वोरों में भर-भर उठा ले गए, कि रानी रुपाली के मुँह में कीड़े पड़ गए थे—"राख वोरों में भरना, वफोलीकोट ले जाना। सौत मेरी न वनी, लली दूधकेला के आँगन में बिछाना। उसी राख में उसकी जनम-माता और धरम-पत्नी को सुई से छेद-छेद, मुट्ठियों से कूट-कूट मारना। महारानी रुपाली के कोप का सन्देश वफोलीकोट की बयार-सँग चलाना, पनार-सँग वहाना, कि वफोलीकोट में वफोलों का नाम लेनेवाली डार-पाँखी दीवार-माखी न रह जाए।"

20

बोल-बोल की व्यथा, कण्ठ-कण्ठ का रुदन—

रमौलिया[1] रे,

तेरी क्या दशा रूठ गई, क्या खोरी[2] फूट गई।
अरे, अभागी···
च-च-च गडुवा (कद्दू)-जैसा कपाल लाया,
वो भी निकला दागी !
हरे हर···हरे हर···हाई रे राम, हाई रे शिवो···
कथा-स्वामी बफौल वीरों के महल क्या आग लग गई, कि···
(च-च-च माया फोड़ने को हाथ, आँसू गिराने को परात माँग, रे

1. कथा-गायक। 2. सिर।

रमौलिया !)

सारी-काली कुमाऊँ, पाली पछाऊँ के सिर-छत्र, पीठ-आधार मर्यादा के बाईस प्रहरियों की एक चिता जल गई है आज !···

दिशा खुली। ढँपे-कमल, मुंदे-नयन खुले।···जली-बाती बुझी, बँधी-बाछी खुली।

पर, आज की सुबह कभी न आए गढ़ी चम्पावत नगरी में, कि गढ़ी चम्पावत के आबाल-वृद्धों के हृदयों पर बिना बादलों के वज्र गिर गए, कि वीर हमारे बाईस भाई बफौल नहीं रह गए हैं।

सारी गढ़ी में, बोल-बोल से हाहाकार, कंठ-कंठ से हुंकार फूटने लगी—"बफौल हमारे वीरों के महल में आग किसी और ने नहीं, उन चार अन्यायी मल्लों ने लगाई होगी, जिन्हें बफौल वीरों ने द्वारों का चाकर बनाके रखा है।"

पर, अंतःपुर से आग कुछ और बाहर फूटी—अनिष्ट ने तो होना ही था ?

अनिष्ट क्यों हुआ ? बिना बादलों के वज्र क्यों गिर पड़े, गढ़ी चम्पावत नगरी पर ?

महाकाल के सूर्यमुखी-शंख को किसी तिरिया ने बजाया है, कि सृष्टि-प्रलय के स्वामी महाकाल का तीसरा नेत्र उघड़ गया है।

महाकाल के राजवंशी सूर्य-मुखी शंख को किसने बजाया ?

महारानी भद्रा ने !

किसने ?

महारानी भद्रा ने !!

किसने ? किसने ?

महारानी भद्रा ने ! महारानी भद्रा ने !! महारानी भद्रा ने !!!

आज कान बैरी हो गए हैं, कि वाणी विपरीत हो गई है ?

उत्तेजित भीड़ प्रचंड हुंकार करती, महारानी भद्रा के [illegible]

श्रोर वढ़ चली। वफ़ौल नहीं रह गए, वफौलों की वैरन भी नहीं रहनी चाहिए।

जोशी दीवान के कान खवर पहुँची।

"कहाँ जा रहे हो, प्रजाजनो? मशाल वाले दौड़ रहे हो, किस वैरी के श्रदिन श्रा गए हैं?"

"श्रदिन वैरी के नहीं, श्रपनी गढ़ी चम्पावत नगरी के श्रा गए हैं, जोशी वा!"—प्रजाजनों के नेत्र गीले पहाड़-जैसे चू श्राए—"हमारे सिर के छत्र, पीठ के श्राधार—वफौल वीर नहीं रह गए हैं।"

"शांतं पापं!···क्यों श्रन्यायी वचन भोर की वेला सुनाते हो, प्रजाजनो!"···दीवान जोशी की जैसे कमर ही टूट गई—"वफौल मेरे वेटों से तो यम भी थर-थर कांप उठता था, प्रजाजनो!"

"घर के वैरी ने लंका श्राग लगा दी है, जोशी वा! रावण नहीं जला, राम-लक्ष्मण जल गए हैं।"—प्रजाजन रुँधे-कंठ से वोले—"महारानी भद्रा रोज महाकाल का सूर्यमुखी राजवंशी शंख रानी वा रुपाली देवी के श्रनिष्ट के लिए वजाती थीं, पर महाकाल वांके हमको हो गए हैं।···हम महारानी भद्रा की राख नहीं रहने देंगे श्रपनी गढ़ी में, जोशी वा!"

श्रोर भीड़ तुमुल हाहाकार करती श्रागे वढ़ गई।

दीवान जोशी टूटे-स्वर में वोले—"महारानी भद्रा श्रव कहाँ महल में? वह होती, यह महा श्रनिष्ट क्यों होता? उसके माथे श्रक्षय-रेखाएँ थीं। शायद, उसके चरण ही गढ़ी से उठ गए होंगे।"

दूसरे ही क्षण, तेजी के साथ दीवान जोशी दौड़ पड़े, कि मेरी मति क्यों मारी गई है?···

* * *

हाय मशाल तेल की, श्राँख मशाल खून की—गढ़ी चम्पावत नगरी

के प्रजाजन महारानी भद्रा के महल जा पहुँचे। वाणी से वचन क्या फूटे—"द्रोहिनी ! प्रजानाशिनी !! वंशघातिनी !!!"

और हाथ क्या ऊपर उठे, कि जिया-हिया आज उनका लोट लेता है, या भादों में सरयू की उत्ताल तरंगें लेती हैं, कि एक तरंग बैठती नहीं, दूसरी 'मैं कौन ?' कहती है—"महल से बाहर आ, पापिष्ठा ! आज हम काले बाल, गोरी खाल वाला तेरा घुंघुरिया मुण्ड[1], केशरिया रुण्ड मुट्ठी खाक बनाएँगे, लाख मन मिट्टी के नीचे दबाएंगे, कि पाप की जड़ दूब की जड़-सी न फूटे।"

बहुत खट्टे दही का जमावन डालने से दूध फटता है—बहुत ज्यादा रोष-तोष से आवाज फट जाती है।

और न दूध फटने से बिल्ली का, न आवाज फटने से गली (कंठ) कुछ बिगड़ता है।

पर, बुरी बात पीले पात-सी रह जाती है, कि एक से आदमी के मन, दूसरे से बन की शोभा घट जाती है।

यों, महल में महारानी भद्रा कहां है, कि उसके माथे की अक्षय-रेखाएँ ही गढ़ी चम्पावत में उभरने-मिटने को रह जातीं, तो अनिष्ट ही क्यों होता ?

*　　　*　　　*

भोर का पहला पंछी चहका,

पहला फूल महका है—

'रमोलिया' महारानी भद्रा को प्रणाम करता है, कि महारानी

1. घुंघराले बाल वाला सिर।

भद्रा पहला प्रणाम भगवान् जागनाथ[1] को कर रही हैं, पहली नीर अंजलि भगवान् भास्कर को चढ़ा रही हैं, कि गढ़ी चम्पावत नगरी से निकली वृद्ध जागेश्वर के मंदिर में पहुँची हुई हैं, कि—जागनाथ परमेश्वर हो, गढ़ी चम्पावत के चंद-वंश की लाज रखना !

❁

1. अल्मोड़ा नगर से प्रायः अठारह मील की दूरी पर भगवान् महाकाल का प्रसिद्ध जागेश्वर नागेश्वर मन्दिर है। यहां प्रस्थापित महाकाल को 'जागनाथ' भी कहते हैं।

21

मंगल-स्थान के राहु-केतु

जोशी दीवान, क्षिप्र गति से, गढ़ी नगरी के दिशा-द्वारों की ओर बढ़े।

मुख-दिशा कौन, पूर्व दिशा, कि जहाँ से भगवान् भास्कर का उदय, अन्धकार का अस्तान[1]।

पूर्व दिशा में, पूर्विया द्वार, कि पूर्विया द्वार में मल्ल पूर्विया पहरेदार, कि वफौल-डुंगी उठाने के प्रयास में टूटे हाथ को पीठ पर लटकाए, ऊँघ रहा था।

दीवान जोशी निकट पहुँचे। आवाज लगाई—"पूर्वियामल्ल हो !"

---

1. निलय।

"कौन ?—" पूर्विया मल्ल अचानक नींद उचटने से, कड़ककर बोला, कि दीवान जोशी के कान एक लम्बी अवधि तक भनभनाते ही रह गए—कौन ? कौन ? कौन ?

भली भाँति उजाला हो चला था। पहली सुघड़ किरन उदयाचल चमकी, अस्ताचल तक के कमलासन-बैठे भँवरों को जगा गई, कि सुन्दरी नखों की कुरेदन रसिकों के मन-मन को भँवर, तन तन को तोता बना देती है।…

दीवान जोशी ने देखा—गढ़ी के पूर्विया-द्वार के दाएँ पार्श्व का कपाट[1] ही लापता है। उन्होंने प्रश्न-भरी आँखों से, पूर्विया मल्ल की ओर देखा।

पूर्विया मल्ल हँसकर, बोला—"सुनो हो, गढ़ी चम्पावत के दीवान जी ! एक स्वामी हमारे वफौल, एक आप। भृकुटि आपकी क्या तनती है, बिना बान-के-बान हमें लगते हैं।… बात यह है, दीवानजी, कि दाँया हाथ मेरा वफौल-डुंगी की पूजा को पाती बन गया। सो, मैं दाँए द्वार का पहरा कैसे भरता ? इसीलिए, मैंने दाँया द्वार ही उखाड़कर, फेंक दिया है, कि द्वार ही जब नहीं रहेगा, तो पहरा न भरने का पाप सिर नहीं पड़ेगा।"

दीवान जोशी क्या कहते ?

बोले—"अच्छा, अच्छा, कोई बात नहीं। मैं तुम्हारी अक्ल को सात भैंसों की एक भैंस बराबर मानता हूँ। अब ऐसा करो, गढ़ी चम्पावत नगरी में रहने की तुम्हारी अवधि बीत चुकी। आज सातवाँ दिन आरम्भ हो गया। अब तुम चारों भाई मल्ल अपनी-अपनी राह लगो। यही आदेश लेकर, मैं तुम्हारे पास आया हूँ।"

"आदेश किसका ?"

"क्यों ? मेरा आदेश तुम नहीं मानोगे ?"

---

1. द्वार।

"एहो, दीवान जी ! जोर से मत बोलो । एक बूढ़े हो, उस पर तिनकिया । हाथ लाठी नहीं लाए हो, कमर टेढ़ी कैसे ले जाओगे ?"—पूर्विया मल्ल विद्रूप कर उठा—"सुनो हो, दीवान जी ! भृकुटि तनी किसे दिखाते हो ? तुम्हारे गोठ का बैल, तुम्हारे द्वार का कुत्ता तो हूँ नहीं ? जाओ, जिन वीर वफौलों के हम दास हैं, जिन्होंने सात दिनों का पहरा हमें सौंपा, उन्हीं को यहाँ भेजो, कि उनके आदेश विना हम द्वार का पहरा नहीं छोड़ेंगे, प्राण भले ही छूट जाएँ ।"

दीवान जोशी को आकाश देखनी, पाताल हेरनी हो गई ।

वफौल नहीं रह गए हैं, यह जानते ही चारों मल्ल पिंजरे से छूटे शेर बन जाएँगे, कि उनके चम्पावत में रह जाने से एक रावण था लंका में, चार रावणों का चम्पावत नगरी में डेरा पड़ जाएगा । लाख लगाए से, फिर जाएँगे नहीं, कि चार मन का कलेवा, आठ मन का भोजन देते-देते कुमाऊँ-पछाऊँ में चिड़ियों के चुगे, पितरों के पिंडों के लिए दाना दुर्लभ हो जाएगा ।

और जब ऐसी संकटापन्न स्थिति आ जाएगी, तब क्या होगा ? भूख से तड़फ-तड़फकर, कुमाऊँ-पछाऊँ के आवाल-वृद्ध प्राण त्यागेंगे, कि मानव जाति यहाँ के लिए पतझड़ के पात हो जाएगी ।

जोशी दीवान की कल्पना में कुमाऊँ-पछाऊँ की धरती-पार्वती के पुत्रों की त्राहि-त्राहि का दृश्य उभर आया ।

कड़ककर, बोले—"पूर्विया मल्ल, यह वीर वफौलों का ही आदेश है, कि सूरज उदय होते ही, कुमाऊँ-पछाऊँ की अस्ताचल-श्रेणी पार चले जाओ ।"

"ओं-हों, ओं-हों, दीवान जी !—" पूर्विया मल्ल परिहास करता, बोला—"ये ऊँचे बोल, यह तिरछी-भृकुटि अपनी दिवानी घरवाली को सुनाना-दिखाना, कि पूर्विया मल्ल तुम्हारे दरबार का चपरासी नहीं, तुम्हारी जमीन का आसामी[1] नहीं है । सुनो हो, दीवान जी ! चार मन

1. जो लगान का हिस्सा देकर दूसरे की जमीन जोते ।

कलेवा जिनसे पाया, आठ मन भोजन जिनका खाया—उन्हीं वफौल स्वामियों के नाम की डकार लेते हैं, और उन्हीं वफौलों के मुख से आदेश भी स्वीकारेंगे, कि और किसी चलते-चाकर, भागते-चपरासी का नहीं। जाओ, वफौल हमारे स्वामियों को ही यहाँ लगाओ।···या, हम ही उन की सेवा में हाजर-नाजर हो जाएँगे।"

दीवान जोशी को इधर देखनी, उधर देखती हो गई, कि अब अन्यायी मल्लों से मुक्ति कैसे मिलेगी ?

"सुनो हो, दीवान जी ! जिनका दिया खाया, उनका दर्शन किए, उनको जौंल हाथ किए विना जो हम चले जाएँगे, सात नरक सड़ेंगे। सो, बुरा न मानना, हमारी वात एक-की-सात वनाके वफौल स्वामियों के पास मत ले जाना, कि हम उनके कोप से थर-थर काँपते, पूस गर्मी, जेठ सर्दी देखते हैं।"—पूर्विया मल्ल वोला।

* * *

जोशी दीवान वारी-वारी प्रत्येक मल्ल के पास गए, पर विना वफौलों के स्वयम् लगाए, जाने को कोई भी प्रस्तुत नहीं हुआ।

दक्षिणी मल्ल तो यहाँ तक वोला—"सुनो हो, दीवान जी, और कहीं जाकर, हम करेंगे ही क्या ? चार मन कलेवा, आठ मन भोजन किस ठौर मिलेगा ? सो, हम सव अपने वफौल स्वामियों की सेवा में उपस्थित होते हैं, कि या हमें चार द्वारों की चाकरी हमेशा के लिए सौंप दें, कि हमारा पापी पेट पलता रहे। या, अपनी वफौल-ढूंगी के नीचे हम चारों को हमेशा-हमेशा के लिए, 'कूटने-धान, पीसने-गेहूँ' वनादें, कि न पापी प्राण रहेंगे, न ये पहाड़-से शरीर ढोने पड़ेंगे।"

···दौड़ते-दौड़ते आए थे दीवान जोशी, रुकते-रुकते चले गए वापस, कि मल्लों को चम्पावत की अस्ताचल-श्रेणी पार करने का उनका उद्देश्य पूरा नहीं हो सका।

और इधर चारों भाई मल्ल, दिशा-द्वारों का पहरा छोड़, बफौलों की सेवा में हाजर-नाजर होने चले, कि आज कुमाऊँ-पछाऊँ की धरती-पार्वती के मंगल-स्थान पर बैठने चार राहु एक साथ चले, कि जैसे अदिन आज गढ़ी चम्पावत के आए हैं—रमौलिया कान पकड़ता है, दंडवत करता है—ऐसे किसी दुश्मन के बैल, अपने जेठू[1] के आएँ, कि न मायके का आसरा रहे गा, न धारिणी घर से भागेगी।

कांटे वन गए।

वावली-सी माँ श्री के पास गई, कि 'माँ, ओ माँ ! जैसी कभी नहीं हुई, आज क्यों हो गई ?' और या आँसू उसके ही गिरने लगे, या शीश-धरी गागर ही फूट गई।

माँ श्री ने धैर्य बँधाने की चेष्टा की—"वावली न वन, वहू ! वफोल मेरे वेटों की स्मृति में तुझे काँटे भी फूल-से ही लगे होंगे, सो काँटे ही वीन लाई होगी। इन कुभागी पंछियों को क्या कहना, कल वहुत वेड़ू-घिघारू[1] खा गए होंगे, स आज अपच के मारे चीख रहे होंगे।"

घड़ी-भर की अवधि न वीती होगी।

लली दूधकेला, पानी भरने गई। वाईस पतियों के नाम पर, वाईस वार पानी भरने का प्रयास किया—गगरी हर वार रीती ही ऊपर आई, कि लली दूधकेला का हिया वैठ गया।

रीती ही गगरी ले, घर को लौटी।

दूर से देखा—वाईस वोरे पीठ पर लिए, वाईस सिपाही चले आ रहे हैं और उनके साथ-साथ वाईस कौवे 'गया-गया' वोलते उड़ रहे हैं, कि सुभागी कावे 'आ-आ' कहते हैं, स्वामी को परदेश से घर वुलाते हैं।

लली दूधकेला गगरी फेंक, दौड़ी-दौड़ी, वफोलमाता के चरणों में गिर पड़ी—"माँ हो, आज की पवन उल्टी, किरन धुंधली लगती है मुझे—वुरे वोलों का भार हिया नहीं सह पाता, वुरे सपनों को नयन नहीं झेल पाते हैं। आज वाईस काले कौवे कुभागी हमारी वफोलीकोट को क्यों आ रहे हैं ? आज वाईस वोरे पीठ से लगाए वाईस राज-चाकर क्यों हिया-शंका, नयन-जलन उपजा रहे हैं ?"

वफोलमाता ने सामने शून्य की ओर ताका—लली दूधकेला सच कह रही थी।

---

1. पहाड़ी फल।

पर, वफौलों के किसी प्रकार के अनिष्ट की कल्पना कौन करे, कि उनकी रेख वाँकी करते, विधाता की कलम भी काँपती है ?

वोलीं—"वहू, वीर-पर्व हाल ही वीता है। वफौल मेरे वेटों के पराक्रम का पुरस्कार राज-चाकर ला रहे होंगे।"

"ना, माँ, ना। मैंने सपना और, सत्य और देखा है। जल्दी से किसी ज्योतिषी को बुलाओ, माँ, कि मेरी वाँई आँख फड़कती है, मुझे वाँई हो जाए⋯कहीं मेरे स्वामियों पर विपदा न आ पड़ी हो⋯?—" लली दूधकेला करुण क्रन्दन कर उठी।

वफौलमाता का हृदय काँप उठा—लक्ष्मी वहू यों विलख उठी है, न जाने क्या अनिष्ट सिर पर मंडरा रहा है ?

सांत्वना देने के लिए, वोली—"वहू, धीरज क्यों छोड़ती हो ? शायद, कहीं किसी गाँव में शादी होगी। गाँव के लोग घट (पनचक्की) में पीस के आटे के वोरे ले जा रहे होंगे।"

"हमारी वफौलीकोट में तो कोई शादी नहीं, माँ ? और न घट यहाँ का चम्पावत नगरी की दिशा में है।"

वफौल माता का हृदय वैठता चला गया—और इस वार वफौल-ढुंगी भी तो वफौलीकोट वापस नहीं पहुँची है ?

राज-चाकर पवन-वेग से महल की ओर वढ़ रहे थे।

वफौलमाता को सहसा ध्यान आया—कैलाश जाते साधु जी ने वफौलों पर अकारण राज-कोप की वात कही थी।

और इधर लली दूधकेला सिर-पाँव से भारी है। खट्टा खाती है, चिट्टा पहनती है। एक दीपक अधिक जलाती, एक फूल अधिक चढ़ाती है—पितरों को प्यारी वनने वाली है।

विकल-स्वर में वोलीं—"वहू, वेटी, लली दूधकेला मेरी ! तेरे अदिन अपने माथे ले जाऊँ, लाड़ली ! आज मेरा हिया भी काँपता है, आज मेरा वचन भी डगमगाता है। न-जाने वफौलीकोट के कौन दिन आने हैं। ला, वेटी ! अपने वस्त्र जल्दी मुझे पहना, मेरे तू पहन। ला,

विलम्ब न कर, कि तेरे पाँव भारी हैं, गात कुसुमिया है। हरी दूब की एक जड़, वफौल-वंश की अन्तिम निशानी तेरी धरोहर है। इसे पलक मूंदना, नयन-पुतली बनाना, आँचल ओढ़ाकर, दूध-धार पिलाना।"

* * *

राज-चाकर, रानी रुपाली के पठाए, कड़क कर, बोले—"ठहर, ओ बुढ़िया ! किधर चली ? वसन-वेश से बूढ़ी, चाल से छबीली है तू, कि तेरी एड़ियों की ठसक और, कमर की लचक और है, कि षोड़षी की चाल को मात करती है।"

लली दूधकेला भयातुर हो उठी। फिर, आपद काल समझ, संयत-स्वर में, बोली—"सुनो, हो, सरदारो ! बुढ़ापे की वेला है, पाँव क्यों नहीं ठसकेंगे। कमर क्यों नहीं लचकेगी ?"

एक राज-चाकर बोला—"सुन हो, बुढ़िया। बूढ़े पाँवों की ठसक, बूढ़ी कमरों की लचक हमने भी देखी है। पर, तेरी ठसक अलग, तेरी लचक अलग है, कि ऐसी ठसक-लचक या हमारी नई रानी रुपाली की ही है, या वाईस वफौलों की एक प्यारी लली दूधकेला की ही हो सकती है।"

लली दूधकेला क्या वचन बोली—"एहो, चपरासियो ! सरदार तुम्हें समझती थी, कि तुम्हारे चेहरे तो वीर राजपूतों के से लगते हैं, पर, वातें तुम्हारी भांड-कुम्हारों की-सी हैं, कि शायद, तुम अपने माँ-बाप की दोगल्ली[1] सन्तानें हो ? अरे, मूर्खो ! लली दूधकेला की पाँव की तली देखोगे, पाँच दिवस आँखें चिमचिमाते रहोगे। मुँह देखोगे, अपने नगर-गांव की दिशा विसर जाओगे।···मैं बुढ़िया तो उनकी चरनदासी हूँ। दांतों से दूधिया[2] हो चली हूँ, पर वालों से पूतिया[3] हूँ। लली दूधकेला तो आज उजले पलँग बैठी, वफौलों के नाम पर वाईस प्रकार के शृङ्गार

---

1. वर्ण-संकर। 2. दूध-मुंहे वालक-सी। 3. नाती-पोतों वाली।

कर रही है, बाईस रत्नों के आभूषण पहन रही है। हाए, रे ! उनमें से एक भी रत्न मेरे हाथ लग जाए, तो सात पुश्तों को बैठे-बैठे खिलाऊँ।"

राज-चाकरों ने रत्नों का नाम सुना, बाईस रत्नों की एक पहनने वाली के सौन्दर्य का वर्णन सुना, तो सोचने लगे, आज 'दोनों जात के रत्न' लूटने का मौका हाथ आया है।

लली दूबकेला लाठी टेकती आगे बढ़ गई।

23

धुँधले दीपक, गीले पिंड

"सुनो रे, लली दूधकेला का कूट के चावल, पीस के आटा बना आए, या नहीं ?"—बफौलीकोट से लौटे चाकरों से रानी रुपाली ने पूछा।

"बाईस बोरे बफौलों की राख के थे, उन सबमें एक-एक अंग लली दूधकेला का भर आए हैं।"—चाकर बोले—"पर, महारानी ज्यू[1] ! बफौलीकोट में एक बात अजब देखी, कि वहाँ के बुढ़ियों के पाँवों की ठसक, कमर की लचक कुछ ऐसी है, कि अपने पाँव जमीन से नहीं उठते।"

"और लली दूधकेला ?"

1. जी।

"मर जाएं, वफीलों की शादी करने वाले नाई-ब्राह्मण ! वाईस वानरों को एक फल, वाईस विल्लियों को एक दूध-कटोरा थी, वह लली महर गाँव की—कुत्तर के, चाट के निचोड़ा-नींबू वना रखी थी ।"

चाकर अपने-अपने इनाम की अशर्फियाँ लेकर चलने लगे। रानी रुपाली वोली—"तुम वड़े स्वामिभक्त सिपाही हो, कल से सब सरदार वनाए जाओगे। तुम्हारे लिए अपने हाथों हलुवा वनाया है। इसे खाते जाओ।"

भूखे सिपाही हलुए पर हाथ फेरने लगे। इधर डकार ली, उधर प्राण-पखेरू विना पाँख के उड़ चले।

सुनो हो, कथा के भँवरो !

रानी रुपाली की क्रूर-रचना विना साँप का जहर, विना जहर की मौत वन जाती है, कि ऐसी चंचला, चपला, चटुली तिरिया का नाम 'रमौलिया' लेता है, छी-छी थूकता है—

कि, ऐसी कुलटा तिरिया का या तो नाम न लेना, हो! या, लेना, तो ऐसे दावना, कि जड़ नहीं फूटे, ऐसे गाड़ना की स्याल[1] न निकाल पाएँ—कि, ऐसी पापिनी तिरिया का नाम रह जाने से इष्टों के नाम के दीपक धुँधले, पितरों के नाम के पिंड गीले होते हैं !

24

मोहिनी-सोहिनी-तिरिया

एहो, कथा के लाड़लो !

हाट की कलिका मैया, घाट के शिवशंकर दाहिने हो जाएँ, तुम्हारे गोठ-बँधे बैलों, बैलों के भरपूर भण्डारी स्वामी के हाथों की हल की मूठ को और गैया दुहती मैया, मैया की गोदी के बालक को, कि बैलों के कंधे कमजोर न पड़ें, कि हल की मूठ ढीली, फसल की अन्नपूर्णा दुबली न पड़े, कि गैया की दूध-धार खंडित न हो, कि बालकों के नाम के दूध-कटोरे रीते न रहें, कि बालकों के रेशम-डोरियों के पालने घर-आँगन में झूलते रहें, कि हिया का हुलास, जिया का मोद बढ़ता रहे।

एहो, मेरे धैर्यवान कथा-रसिको, कथा के वचन तुम्हारी उमर को लग जाएँ, कि जिस चंद्रमुखी रात्रि-वेला में निंदियाली-बयार बया चलती है, कि वन-डार की पांखी, घर-दीवार की माखी भी सो जाती है, कि ऐसी निंदियाली बयार-वेला में तुम्हारे आँखों की नींद कथा के आंखरों

को समर्पित हो गई है, कि मेरे कथा-स्वामी बाईस भाई वफौलों को तुलसी-पात की मुट्ठी, गंगा-जल की धार और चन्दन-काठ की चिता मिल गई थी, कि उनकी वीर-आत्माओं को वैकुण्ठलोक में ठौर मिले। रमौलिया हुड़क हाथ मारता है, उनको अपनी वाणी का सत् सौंपता है।

सत्, रे सत् !

सत् रह जाए वफौलीकोट की माटी-परिपाटी का, कि इस चन्द्रमुखी रात्रि-वेला में मैं अपने कथा-प्रेमियों को प्रणाम सौंपता हूँ—कि, एहो, कथा के सुनने वालो, चन्द्रमुखी रात्रि के अब अन्तिम आसन लगने लग गए हैं, कि मैं भी अपनी कथा के अन्तिम आसनों के छंद खोलता हूँ, कि जो मैंने कहा था, कि तिरिया के नाम की तितपाती भी बुरी होती है, सो झूठ नहीं कहा था, कि चंचला-चपला और चटुली तिरिया का नाम आने से आँखों की ज्योति फीकी पड़ जाती है, कि मुँह की वाणी तीती हो जाती है !

एहो, एक समय के मध्य में, कमण्डलुधारी-कल्याणकारी, चौमु चमत्कारी-वेदाष्टकी विधाता भी क्या तिरिया चटुली के फेर में चौथी अवस्था में ऐसी मति बिसरी, कि उनको तिरिया की ललक लगी, कमलासन काँटों की चौकी बन गया।

ब्रह्मा ने क्या सोचा, कि सृष्टि करते-करते मेरी यह चतु आ गई, मगर 'घुरुवा के ही गेहूँ, घुरुआ का ही घट[1], औरों लिए चार-चार, घुरुवा के लिए चौपट' वाला हिसाब हाथ आ एक-से-एक मोहिनी-सोहिनी रूपसियों की सृष्टि मैंने की, म गाँव के खागए, घर के गावें गीत' वाली कहावत चरितार्थ हुई की दीठ नहीं पहुँचेगी सोचकर, गहरे समुन्दर की तलहटी सर्जना की, मगर विष्णु की बाँकी दीठ ने काम बिगाड़ ऊँचे हिमालय की असूर्यस्पर्शी गुफाओं में शैलजा पार्वती

1. पनचक्की।

थी, डमरूधारी शंकर डिमक-डिमक डमरू बजाता वहाँ पहुँच गया।...
अहा रे, तिल-तिल रूप बटोरा था, तिलोत्तमा रची थी, वह भी तन-मन को धूप में धरी नौनी-सी तिलमिलाती चली गई, कि रम्भा-उर्वशी-मेनका की रचना की थी, तो बाबा-दादा के नामों के प्रणाम सौंपकर, राजा इन्द्र के दरबार में तायँया-तायँया करने पहुँच गईं—कि अहा रे, मेरे रूखे कपाल, सेज की सोने वाली सुन्दरियों के नाम पर वही मिसाल सामने आई, कि 'सिंचाई-गोड़ाई अपने माथे पड़ी, फसल वन के वानरों के हिस्से लग गई।'

एहो, चौमुखी विधाता का चित्त आज क्या डाँवाडोल हो उठा, कि कमलासन छोड़ा उत्तर-हिमाल की घाटियों में बेचैन फिरने लग गए, कि आज एक ऐसी मोहिनी-सोहिनी तिरिया की सर्जना करूँगा, कि पार्वती-लक्ष्मी-इन्द्राणी के मुखों की ज्योति जिसे देखते ही धुँधली पड़ जाए, कि शंकर-विष्णु और इन्द्र छाती पीटते, हाय-हाय करते रह जाएँ!

अहारे, कमण्डलुधारी-कल्याणकारी, तीन लोक, चौदह भुवनों के स्वामी वेदमुखी ब्रह्मा क्या करनी करते हैं, क्या भरनी भरते हैं, आज ऊँचे हिमाल की बुरूँशघाटी में, कि फूलों-भरा पराग-केशर, पातों-अटकी ओस बटोरते हैं। हरी दूब की गाँठ, कमल-नाल की छाल सहेजते हैं, कि बिल्वपत्री-बुरूँशपत्री-रेखाओं का संजोग बिठाते हैं, कि विश्व-विमोहिनी भुवन-सोहिनी तिरिया की रचना करने लग गए हैं! नदी-किनारे के गंगलोड़ों पर आसन लेती लहरों को देखते हैं, तो अनार-कुसुमी आँखों की बनावट में तरंग घोलते हैं, कि डाल-खिलते बुरूँश-फूल को देखते हैं, तो कलमी आम-जैसी-बनावट के कपोलों पर रंगन चढ़ाते हैं। वन-दौड़ती हिरनी को देखते हैं, तो घुटनों की घुंडियों पर हाथ फेरते हैं, कि आकाश-उड़ती पतंग की डोर देखते हैं, तो कमर पर वेदपत्री अंगुलियाँ फिराते हैं, कि वृक्षों की डाली अटारी बैठे कपोतों को देखते हैं, तो स्कंधों की बनावट को ठीक करते हैं।

अहारे, मुंह को निवाला, आँखों को नींद, और देह को [illegible]

विसर गए हैं विधाता, कि आँचल में गोल-गोल नाशपातियों का, जाँघों में लम्बी-लम्बी लौकियों का नक्शा उतारने लगे हैं, कि आप ही सर्जना करते, आप ही आँखों से आसक्ति, मुँह से लार टपकाते जाते हैं।

एहो, दिन बीते, मास लगे। मास गए, वर्ष पूरा हो गया, कि इधर वेदाष्टकी विधाता मोहिनी-सोहिनी तिरिया की रचना में लगे थे, कि उधर हिमाल-स्वामी शंकर, समुन्दर-स्वामी विष्णु, और इन्द्रलोक के राजा इन्द्र विधाता की खोज में चल पड़े, कि कमलासन पर वेद-पत्रों को पलटते-पलटते सृष्टि के स्वामी विधाता कहाँ लोप हो गए ?

अहा, रे अहा !

वेदाष्टकी विधाता ने मोहिनी-सोहिनी तिरिया की रचना पूरी कर डाली, कि रूपसी हँसी क्या, कि आधी रात को धूप-जैसी खिल उठी, रोई क्या, कि सूखे पथरौटों से पानी नितरने लगा।

कुछ क्षण तो विधाता अपनी चतुर्थावस्था की सुध-बुध ही नहीं सँभाल पाए, कि तरुणी तिरिया का जादू सबसे ज्यादा बूढ़े आशिकों के सिर पर ही चढ़ता है।

ज्यों-त्यों चलायमान-चित्त थोड़ा स्थिर हुआ, तो विधाता ने पूछा—"मोहिनी पहले तुम खिलखिला हँसीं क्यों, बाद में टुलटुल रोई क्यों ?"

मोहिनी-सोहिनी तिरिया नीलम-नयन मटकाती, अनार-कली चटकाती बैन क्या बोली—"एहो, मेरी सर्जना के स्वामी ! जिस हिया-ललक, नयन-लिप्सा से मोहाविष्ट होकर आपने मेरी कुसुम-काया की रचना की है, उससे मैं अपनी जनम-वेला के भी पहले से ही परिचित होती चली आई हूँ, कि जब मेरे बुलँशिया-कपोलों और बेलपिण्डी आँचल[1] पर आप अपनी दो घिसी अँगुलियों को फिराते थे, तो…हाई, लाज से मेरी जीभ अटपटा रही है, कि कलमी-कपोलों पर आपके हाथों-चढ़ी रंगत और गहरी हो रही है।"

1. बेल के दानों के बराबर और सुपुष्ट उरोजों वाली छाती।

मोहिनी-सोहिनी तिरिया ने अपने वेलपिण्डी-आंचल पर अपनी दोनों हंसगौरी-भुजाएँ रख दीं, कलगी-कपोलों पर माथे-अटकी सुवरन-केशा-लट ढुलका दीं, कि विधाता के बाएँ हाथ का कमण्डलु हिल गया, तो जल छलका, कि मुख-मण्डल हिल गया, तो लार टपक पड़ी। एहो, तिरिया के सैन-वैनों को ससुराल का सुख, मायके का आसरा न मिले, कि कमण्लुधारी-कल्याणकारी ब्रह्मा के दाएँ हाथ की वेदपत्री डाल से टूटे, बावली बयार में छिटके पीपल-पत्ते-सी थरथराने लग गई, कि—'हाय मेरी मोहिनी, हाय मेरी सोहिनी ! हाय मेरी मोहिनी, हाय मेरी सोहिनी !...'

हट्ट, तुम्ह पुरुप-पगलैया चपला-चटुली तिरिया की तरुणाई को हरिद्वार, बद्री-केदार के शंड-मुशंड कुकर्मी जोगियों की जमात गीले गुड़ की भेली पर चिपटी मक्खियों-सी चिपट जाए, कि तेरे चंचल-चरित्तर का चिमटा संगम के नागा बाबाओं के हाथ पड़ जाए—कि, तीन लोक, चौदह भुवनों के स्वामी वेदमुखी विधाता को ऐसा बावला बना दिया, कि त्रिखंडी-संसार का स्रप्टा रंडी के यार की तरह तेरे लिए बावला बन गया, कि—'हाय, मेरी मोहिनी !··· हाय, मेरी सोहिनी।'

एहो, चंचला-चपला-चटुली मोहिनी-सोहिनी तिरिया के आगे के अगुवा, पीछे के पिछलगुवा और गांव के मुखिया, पट्टी के पटवारी में से एक बाकी न बचे, कि जिसके कुनुमिया-कण्ठ से निकले बोल किरमड़ के तिमुखिया-कांटों को भी मात करते हैं !

वचन कैसे तिरचण्डाली बोली—"आं-हां-हां ! एहो, मेरी सर्जना के स्वामी ! इस चतुर्थावस्था में सातवें-बरस के सांड की तरह बेकाबू होना आपको शोभा नहीं देता, कि मुंह-सामने की तिरिया से संगति और पीठ-पीछे के दुश्मन से बैर करने में उतावली करना ठीक नहीं होता ! आपने पूछा था, कि पहले मैं हंसी क्यों, और बाद में रोई क्यों ? तो, एहो मेरे जनमदाता, मैं हंसी यों, कि आपने मुझे तो कुनुमिया-काया, तताए तांबे-जैसी तरुणाई और सोलह वर्षों की सुनहली वयस्संधि दी, कि पुरुपनारि के वन-फूलों के भंवरे भी कली-कांख, कुसुम-पांख छोड़कर, मेरे [illegible]

मँडराने लगे हैं। मगर अपनी थुलथुली-देह, ढलती-उमर को ज्यों-का-त्यों ही रहने दिया, कि आपके मन का मोह, आपकी आँखों की आसक्ति देखती हूँ, तो आपकी बाँहों में झूलने की तृष्णा जागती है, मगर आपके देह की सिकुड़ी-खाल, धीमी-ढाल और झूलती-कमर, फूलती-जटाएँ देखती हूँ, तो आपके चरणों में बाबाजी, पायलागों !' कहने का मन होता है ! सो, एहो तीन लोक चौदह भुवनों के स्वामी ! पहले अपनी जर्जर काया की भी नयी रचना-सर्जना करो, कि आपकी यह मोहिनी-सोहिनी कन्या-कुंवरी सोलह के नाम पर चौंसठ शृङ्गार करेगी, कि सेज सोएगी, सुवास फैला देगी। एहो, मेरी सर्जना के स्वामी, मैं रोई भी इसीलिए, कि यदि आपकी काया चतुर्थावस्था से यों ही जर्जर-चौपट रही, तो न-जाने मुझ अबला को मर्त्यलोक के नरों, देव-लोक के नारायणों में से कौन अपने घर उठा ले जाए, कि तिरिया की तरुणाई पर पुरुष की वृद्धावस्था का पहरा ज्यादा दिन नहीं टिकता है !

एहो, कथा के लाड़लो, 'बाप से बेटी, गडेरी से गेठी[1] बड़ी' इसी को कहते हैं, कि हाथ का मसला मैल, माथे का चंदन-टीका ऐसे ही बनता है, कि सैन-बैनों की बाँकी तिरिया ऐसे ही हिमाल-जैसे ऊँचे कर्मों और सागर-जैसी गम्भीर बुद्धि वाले पुरुषों को चौरस्ते के चमार, रंडी के यार की तरह नाच नचाती है, कि अखिल ब्रह्माण्ड के स्रष्टा-स्वामी कल्याणकारी विधाता चपला-चटुली मोहिनी-सोहिनी के मोह-जाल में ऐसे फँस गए, कि कमण्डलु से अभिषेकी-जल निकालकर, सिर की सफेद जटाएँ काली और देह की चिमचिमी चमड़ी लाल कुतकुतान बनाने लग गए, आज उत्तर-हिमाल की बुरूँशघाटी में !

---

1. गडेरी और गेठी का शाक बनाया जाता है। गडेरी आकार और स्वाद दोनों में गेठी से श्रेष्ठ होती है।

25

तिरिया भलो न काठ की

एहो, कथा के ठाकुरो !

रमौलिया की वाणी के वचन गूंगे हो गए हैं, आँखों की ज्योि
धुंधला गई है, कि—अहा रे, कैसी अनहोनी घटना घट रही थी उत्तर
हिमाल की वरूँशघाटी में, कि कोटि-कोटि भाग्यों के विधाता कमलासनी
ब्रह्मा एक अपने कपाल की वाँकी रेखाओं का हिसाब लगाना भूल गए
कि 'कुवेर के घर की कंगाली, धन्वन्तरि का पेटशूल' इसी को कहते हैं

हरि, हे हरि ! राम, हे राम !

च-च-च...

इधर वेदमुखी विधाता अपनी वृद्धावस्था की वुढ़ैनी, देह का
चिमचिमापन और गात की झुरझुरी निकालने में लगे थे, कि इधर
वुरूँशघाटी की वनखण्डी-वयार बौराती कहाँ पहुँची ? हिमाल के शंकर,
समुन्दर के विष्णु और देवलोक के इन्द्र राजा के समीप, कि कोहिन-

सोहिनी तिरिया के कुसुमिया-गात की गंध, कपोत-पंखी-कपोलों के केशर ने क्या चमत्कार किया, कि तीनों देवराजा आगे को पाँव बढ़ाना, पीछे की छाया बदलना बिसर गए। बुरूँशघाटी की वनखण्डी-बयार से तीनों देवराजा क्या प्रश्न पूछते हैं,—कि 'हँली वनखण्डी बहूरानी, किस धरती की माटी, किस वन की घाटी की यात्रा करके आ रही है तू, कि तेरे स्पर्श-मात्र से मन की दशा और, तन की दशा और हो रही है ?'

एहो, वनखण्डी बहूरानी क्या बाँके वचन बोली, कि—'एहो, देव-राजाओ, आज वेदमुखी विधाता ने बुरूँशघाटी में क्या कौतुक रचा है, कि तीनों लोकों से न्यारी तिरिया मोहिनी-सोहिनी की सर्जना की है, कि उसकी चरण-तली की शोभा अप्सराओं के मुख-मण्डलों की शोभा को मात करती है। अब उसे अपनी सेज की सेजवती, अपनी बाँहों का बाजूबंद बनाने के लिए, कमण्डलुधारी-कल्याणकारी ब्रह्मा अपनी वृद्धावस्था का बोझ उतारने में लगे हुए हैं, कि ..

अर-र-र-र....

तीनों देवराजा वनखण्डी-बयार के पूरे वचन कहाँ से सुनेंगे, चित्त के चलायमान, गात के चंचल होकर, बुरूँशघाटी को दौड़ने लगे, कि—जै[illegible] अनव्याई कलड़ी के गात की गंध पाकर, सरसों के खेत में का साँड अ[illegible] वश में नहीं रह पाता ! कि, अहारे, चपला-चटुली मोहिनी-सोहिनी तिरि[illegible] तेरे चरित्तरों से तीन लोकों के स्वामी देवराजा भी पार नहीं पा [illegible] कि मिट्टी-पानी का बना नर कहाँ अपने को काबू में रख सकता है[illegible] तिरिया के सैन-बैन पवन की दिशा, ऋषि-मुनियों के आसन [illegible] देते हैं।

एहो, आज तीनों देवराजा मोहिनी-सोहिनी तिरिया की [illegible] बरूँशघाटी के कँकरीले-पथरीले वनपथों पर ऐसे दौड़ रहे हैं, [illegible] नाशपाती के बगीचों की ओर दौड़ने वाले वन के वानरों की [illegible] मात हो रही है।

इधर वेदमुखी ब्रह्मा का कमण्डलु-भीतर का हाथ कमण्डलु[illegible]

गया, कि 'मेरे सुख के शत्रुओं ने यहाँ भी मेरा पिण्ड नहीं छोड़ा, कि चौरस्ते के आवारा साँडों-जैसे दौड़ते चले आ रहे हैं, कि ये सत्यानाशी मेरी मोहिनी-सोहिनी को मेरे लिए थोड़े ही छोड़ेंगे ?'

एहो, वनियों के प्राण औरों की दौलत, वुड्ढों के प्राण उनकी जवान पत्नियों में अटके रहते हैं, कि मोहिनी-सोहिनी तिरिया को औरों की दीठ से वचाने के लिए चौमुखी-चमत्कारी ब्रह्मा ने क्या विधान वनाया, क्या कौतुक रचा, कि मोहिनी-सोहिनी तिरिया पर अपने वाएँ हाथ के कमण्डलु का जल-छींटा मारा, कि कुसुमिया माँस-पिण्ड को काठ वना दिया ! —कि, जव काठ भी तिरिया को देखेंगे, तो तीनों तिरिया-लोभी देवराजा अपना-जैसा मुह लेके लौट जाएँगे, और मैं वाद में फिर इसे अभिपेकी-जल का आचमन दूँगा, प्राण-प्रतिष्ठा करूँगा, कि एक ब्रह्मलोक तो मेरा देव लोक में है, कि दूसरा उससे भी आलीशान ब्रह्मलोक इस वुरूँशघाटी में वसाऊँगा।

* * *

'मैं पहले, मैं पहले' करते, तीनों देवराजा चौमुखी ब्रह्मा के पास पहुँचे, तो यह देखकर खिसिया गए, कि काठ की मोहिनी-सोहिनी तिरिया एक ओर पड़ी है और वेदाध्यायी विधाता उनकी दयनीय-दशा पर वाँकी हँसी हँस रहे हैं—"एहो, महादेवताजनो ! वगीचे में घुसने वाले वानरों, खिरक में घुसने वाले साँडों की तरह ध्वाँ-फ्वाँ-ध्वाँ-फ्वाँ दौड़ते कहाँ से चले आ रहे हो ?"

खिसियाये देवराजा विष्णु वोले—"एहो, वेदमुखी विधाता, हमारा नमस्कार लो ! वात यह है, कि इधर लगभग एक वर्ष से आप अपने ब्रह्मलोक से लोप रहे हैं, सो हम लोग घवरा गए थे, कि न-जाने हमारे कमलासनी-ब्रह्मा पर कौन-सी विपत्ति आ पड़ी। आपकी शोध में ही यहाँ तक आ पहुँचे, तो यह देखकर आश्चर्य हो रहा है, कि इस

वृद्धावस्था में अब आप सृष्टि को सँभालना छोड़कर, वढ़ईगिरी में लगे हुए हैं !"

हिमाल-स्वामी शंकर क्या पूछने लगे, कि—"एहो, वेदमुखी विधाता ! जरा मुझे यह तो वताइए, कि आपने यह काठ की तिरिया क्यों वनाई है ? खाट वनाते, तो हम समझते, कमलासन पर सोते-सोते जी भर गया होगा, सेज वदलने की इच्छा होगी। मुगदर वनाते, तो हम सोचते, कि कमलासन पर सोए-सोए सुस्ती आ गई होगी, कसरत करने की वान ढाल रहे होंगे। हल वनाते आप, तो हम सोचते, कि वुरूँशघाटी की वंजर धरती को उपजाऊ वनाने की वात सोच रहे हैं, ताकि आपकी सृष्टि के नरों का पेट भरे ! मगर, यह काठ की तिरिया आपके क्या काम लगेगी, कि अगर ब्रह्मलोक के अपने मोतियामहल में रखेंगे इसे आप, तो वेकार में ब्रह्माणी जी को सौतिया-डाह ले डूवेगा, कि अच्छा किया, इस वृद्धावस्था में मेरी छाती पर कील-जैसी ठोंकी है !..."

वमशंकर भोले अट्टहास कर ही रहे थे, कि इन्द्रराजा क्या वोले, —"इस काठ की तिरिया की शोभा तो मेरे दरवार में ही हो सकती ! मेनका-उर्वशी इसे देखेंगी, तो अपने रूप पर इठलाना छोड़ देंगी।"

इतना कहते-कहते, इन्द्रराजा काठ की तिरिया को उठाने ही ल[illegible], कि समुन्दर-स्वामी विष्णु वोले—"नहीं, इस काठ की तिरिया [illegible] शोभा तो मेरी शेप-शैया के सिरहाने ही वढ़ सकती है, कि इसका [illegible] देखेंगी, तो लक्ष्मी, घर-घर डोलना छोड़कर, एक मेरी सेवा में [illegible] लगाएँगी !"

अव वमशंकर से भी नहीं रहा गया। वोले—"अहा, इस ह[illegible] तो यह काठ की तिरिया मेरे लिए अधिक आवश्यक है, कि एकद[illegible] वीराने उत्तर-हिमाल में मेरा आसन लगा करता है। और पा[illegible] निकट के मायके वाली ठहरीं, सो वेर-वेर मुझे अकेला ही छोड़ ज[illegible] वस, भूत-वैतालों की संगति-रह जाती है। अव इस काठ की ति[illegible] अपने साथ ले जाऊँगा, तो जरा मेरा मन भी वहलेगा और [illegible]

भी मायके जाने की बान बिसरेंगी।"

इतने वचन बोल, बमशंकर ने उस काठ की मोहिनी-सोहिनी तिरिया को उठाया ही था कि एक ओर से इन्द्र राजा खींचने लगे, "मैं ले जाऊँगा", दूसरी ओर से विष्णु खेंचने लगे, "नहीं, मैं ले जाऊँगा।' और ब्रह्मा ने बाँहों में भर लिया, कि "यह तो मेरी सर्जना है, मैं इसका स्वामी हूँ!"

और उस काठ की चपला-चटुली तिरिया मोहिनी-सोहिनी के मोह में फँसे चारों देवराजाओं में ऐसी खेंच-तान आरम्भ हो गई, कि सड़क के आवारा कुत्ते भी ऐसे किसी हड्डी-बोटी को नहीं खींचते हैं! मोहिनी-सोहिनी तिरिया को छीनने में चारों नारायणों ने अपनी-अपनी शक्ति ऐसी लगाई, कि मोहिनी-सोहिनी का अंग-अंग खण्डित हो गया, मिट्टी में मिल गया और चारों देवराजा—शीशा तोड़कर, खिसियाए बानरों-जैसे—चुपचाप अपने-अपने लोक को लौट गए, कि पुरखे जो यह कह गए, तो झूठ नहीं कह गए, कि 'तिरिया भली न काठ की, तस्कर भला न डोर का—आश्रय भला न ससुर का, संग भला न चोर का!'

* * *

एहो, कथा के लाड़लो!

इस अज्ञानी रमौलिया के ये टूटे-फूटे वचन ध्यान में धर लेना, कि चपला-चटुली तिरिया, हाड़-माँस की छोड़, काठ की भी भली नहीं होती, कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश और इन्द्रराजा तो देवराजा ठहरे, कि उनको मोहिनी-सोहिनी तिरिया का विष नहीं व्याप सकता। मगर मर्त्यलोक के नरों के लिए उन्होंने एक मिसाल छोड़ दी, कि चंचल-चंचला और चटुली तिरिया के फेर में पड़ने से अनिष्ट ही होता है, कल्याण नहीं, कि इस कथा की बेला रमौलिया उन्हें अपने-अपने नारायण सौंपता है!

26

तिरिया के सत्यानाशी सैन-बैनों की भद्रा

राजा के राज-पाट, प्रजा के घर-घाट के अदिन

एहो, चंचला-चपला-चदुली तिरिया रानी रुपाली के सत्यानाशी सैन-बैनों से कुमति के राजा कालीचन्द की बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी, कि उसने बाईस भाई बफौलों के महल में आग लगवा दी थी, कि पूरी गढ़ी चम्पावत नगरी के राज-पाट के लिए अ-मंगल न्यौत लिया था।

*　　　*　　　*

इधर बाईस भाई बफौलों के जलाए जाने के अशकुनिया-अक्षर फैले, कि उधर चार भाई मल्लों का अट्टहास गूंज उठा—"धन्य हो, रे हमारे

पंचपिता पंचनाम देवो, कि हम चारभाई मल्लों को दाहिने हो गए हो। बफौल हमारे दुश्मन नहीं रह गए हैं, कि अब इस सारी कुमाऊँ-पछाऊँ में कोई माई का लाल, गाई का बछड़ा नहीं, कि जो हमसे टक्कर ले सके।"

पूर्विया मल्ल, पश्चिमिया मल्ल—
उत्तरी मल्ल, दक्षिणी मल्ल!

चारों चलते-पहाड़ अपने राक्षसी-पाँवों की धमक से धरती धँसाते, आकाश कँपाते राजा कालीचन्द के दरबार की ओर चल पड़े, कि अब और कहाँ जाना है? चार मन का कलेवा, आठ मनों का भोजन गढ़ी चम्पावत के ही राज़-दरबार से पाएँगे, कि खाएँगे-पिएँगे मौज करेंगे, कि दसगजिया टोपी, चौंसठगजिया चोला पहनेंगे और चौदह विद्या की कुश्ती खेलेंगे, धौंसा बजाएँगे।

राजा कालीचन्द के राज-पाट के अदिन आ गए, कि चपला-चटुली तिरिया मैया महारानी बनी सुवर्ण-सिंहासन को पलीत कर रही है, कि मूढ़ों का सरदार बुद्धिवल्लभ सेना का सेनापति बना हुआ है, वीरों की पाँत कलंकित करता है, कि जहाँ वीरगढ़ी बफौलीकोट के स्वामी, धरती-पार्वती के लाड़ले बाईस भाई बफौलों के कल्याणकारी-आसन लगा करते थे, वहाँ सत्यानाशी मल्लों की चौकी लग गई है।

एहो, सत्यानाशी-कर्मचांडाली मल्ल राजा कालीचन्द के राज-दरबार में कैसे बाँके वचन बोलते हैं—"एहो, राजा कालीचन्द! बाईस भाई बफौलों की ठौर खाली हो गई है, इसका शोक तुम जरा-सा भी मत करो, कि अब हम चार भाई मल्ल तुम्हारे दरबार की शोभा बढ़ाएँगे। एहो, राजा कालीचन्द, हम पंचनाम देवों के मंत्रपूत मल्ल अब तुम्हारे राज-दरबार की चाकरी करेंगे; कि चार मन का कलेवा, आठ मन का भोजन करेंगे, कि कुश्ती खेलेंगे, धरती धौंसा बजाएँगे, कि तुम्हारी इस चम्पावत नगरी की शोभा बढ़ाएँगे।"

हरि, हे हरि!

दीवान जोशी विज्ञानचन्द्र और राजा कालीचन्द गात से दुर्बल, मन के मलीन होने लग गए हैं, कि इन सत्यानाशी मल्लों के लिए इतना अन्न-वस्त्र हम कैसे जुटा पाएँगे, कि गढ़ी चम्पावत के राज-भण्डार का अन्न तो ये चारों भाई मल्ल कुछ ही दिनों में चौपट कर देंगे।

राम, हे राम !

कुमाऊँ-पछाऊँ का खड्गधारी राजा कालीचन्द ढुल-ढुल-ढुल-ढुल आँसू टपकाने लग गया, कि मैं जो बाईस भाई वफौलों का वंश-नाश न करता, तो ये चारों मल्ल क्यों मेरी छाती पर घुटने टेकते ? अब कैसे मुक्ति मिलेगी, इन सत्यानाशी मल्लों से ?

एहो, डोटीगढ़ी की कुवचनिया-कुलक्षणा तिरिया आज काली कुमाऊँ, पाली पछाऊँ के लोगों के घर-घाट को वैरन बन गई है, कैसे सत्यानाशी वचन बोलती है, कि—"एहो, राजाजी ! चित्त चलायमान, गात कम्पायमान क्यों हो रहा है आपका ? ये चार भाई मल्ल राज-दरबार में रहेंगे, तो दशों-दिशाओं में कीर्त्ति तो आपकी ही फैलेगी ? और जहाँ तक इनके भोजन-वस्त्र का सवाल है—एक-एक कुटुम्ब के पीछे इनके भोजन-वस्त्र का राज-कर लगादो, कि पंचनाम देवों के नाम की फूल-पाती चढ़ाने वाली आपकी काली कुमाऊँ के लोग पंचनाम देवों के मंत्र-पुत्रों को भोजन-वस्त्र देकर, पुण्य बटोरेंगे और अपना-अपना परलोक सुधारेंगे।"

द, रे, चंचला-चपला-चटुली रानी रुपाली ! ऐसे घर-घाट-विनाशी पुण्य बटोरने, परलोक सुधारने की अमंगलकारी घड़ी तेरे पालनेवालों की डोटीगढ़ी में आ जाए, कि तेरे सत्यानाशी सैन-वैनों की भद्रा को चौरस्ते के चमार की झाड़ू लग जाए, कि राजा के राज-पाट, प्रजा के घर-घाटों को अनिष्ट न्यौतती है तू, कि तेरे अशकुनिया मुख-बोलों पर श्मशान-घाट की मिट्टी पड़ जावे !

27

माता का हिया : पूत के वचन

वीरगढ़ी वफोलीकोट की धरती के लाल, कुमाऊँ-पछाऊँ के सिर-छत्र के सम्राट् वाईस भाई वफोलों के विनाश की हृदय-विदारक कथा कुमाऊँ-पछाऊँ के नर-नारियों के कण्ठ-कण्ठ को रुलाने लगी थी, कि उधर अपने मायके महर गाँव में पहुँची लली दूधकेला के लिए हाथ-चूड़ी हथकड़ी वन गई, कण्ठ-चरेवा गलफाँस वन गया, कि माँग की सिंदूर-रेखा वैरन वन गई, तन-मन को लमछड़िया नागिन-वैरी डँसने लगी।

हरि, हे हरि ! राम, हे राम !

वीर वफोलों के हिये का हार लली दूधकेला विलाप करती है, कि आँखों के मोती, अधरों के बोल धूल में मिलाती है—"वफोल, मेरे स्वामी, वफोल मेरे प्यारे ! वफोल मेरे स्वामी, वफोल मेरे प्यारे।"

शिव, हे शिव !

लली दूधकेला के कण्ठ का करुण-क्रन्दन वनैली-वयार, पनैली-धार जैसा महरगाँव की माटी में शीश धुनता है—"वफौल मेरे स्वामी, वफौल मेरे प्यारे ! वफौल मेरे स्वामी, वफौल मेरे प्यारे ! अब किसके लिए वफौलीकोट के आँगनों में खड़ी गढ़ी चम्पावत की दिशा में आँखें लगाती रहूँगी, मेरे स्वामी ? गैया दुहती थी, दूध-कटोरे भरती थी, अब किसके नाम पर भरूँगी, मेरे स्वामी, कि मेरे रीते दूध-कटोरों की लाज कौन रखेगा ? किनके नाम की फूल-पाती ईष्ट-पितरों को चढ़ाऊँगी, मेरे स्वामी, कि मैं तो आज सुहागिनी से अभागिनी बन गई हूँ. कि मेरे अशकुनिया-आँचल की छाया से अब वन के काँटे भी मुख फेरेंगे, कि मैं दुखियारी अब अपना अशकुनिया-मुख औरों को कैसे दिखा सकूँगी ?"

इष्टों को नैवेद्य, पितरों को पिंड देने वाली सुमंगला लली दूधकेला विलाप क्या करती है, कि आँगन के पथरौटों पर दरार पड़ रही है—"हे ईश्वर, हे परमेश्वर ? वफौल मेरे स्वामी वन के शेरों से भी बलवान, गोदी के बालकों से भी भोले थे, कि जिन सत्यानाशियों ने मेरे ऐसे वफौल स्वामियों को सुख से नहीं रहने दिया, उनका ना[illegible] कौन करेगा ?"

विलाप करती, शीश धुनती लली दूधकेला सूने वन आई, [illegible] रचाने लगी, कि—

जब वफौल मेरे स्वामी नहीं रह गए, तो मैं अमंगला जीवित [illegible] क्या करूँगी ?

एहो, कुनुमिया-गात, केशरिया-पिण्ड वाली कमलनयना [illegible] दूधकेला आँसू बहाती है, कि ओस-बूँदों से भरे पिनालू के [illegible] पलटाती है, कि सूखे काठ बीनती है, चन्दन-चिता रचाती है।

चन्दन-चिता रचाई, शृङ्गार उतारा। अग्नि-अभिषेक दे[illegible] वफौल स्वामियों के चरणों का ध्यान धरती लली दूधकेला [illegible] को अर्पित होना ही चाहती थी, कि लली दूधकेला की को[illegible] अजन्मा पूत उसका आंचल डुलडुलाने, गात कुतकुताने ल[illegible]

वैठे पंछी-पोथिल-जैसा क्या चहकता है—"ठहर, ओ माँ, ! क्यों तू इतनी बावली हो गई है, कि तुझे अपने अजन्मे-छौने का मोह भी नहीं रह गया है ? तू चिता जलेगी, ओ माँ, तो तेरे साथ ही वफौल-वंश की जड़ भी भस्म हो जाएगी, कि ऊँचे हिमाल, गहरे समुन्दर-जैसे धर्म-कर्म के वली वाईस भाई वफौल जो गढ़ी चम्पावत नगरी में मारे गए, उनका तारण कौन करेगा ? कौन उनके नाम के श्राद्ध-न्यौतेगा, ओ माँ, कौन उनके नाम पर काशी-प्रयाग के तीर्थ-घाटों में आचमन करेगा, और कौन उनके हंत-घात का वदला लेगा ?"

अहारे, सुमंगला लली दूधकेला की कोख का अजन्मा वीरवंशी पूत पूजा के अक्षतों-जैसे वचन विखेरता है, माता का हिया हुलसाता है, कि—"ठहर, ओ माँ ! मन मलीन, हिया हारमान न वना, कि तू बिलबिलाती-विलखती है, तो मेरी छाती में दरार पड़ती है, कि—ले, एक अनहोनी आज मैं भी करता हूँ, कि पूत जनमते हैं, टिहाँ-टिहाँ रोते हैं, कि माताएँ उन्हें आँचल में लेके, हिल्लुरी-हिल्लुरी कराकर, चुप कराती हैं, कि आज में तेरा वफौलवंशी पूत जनमता हूँ, कि तेरी आँखों के आँसू पोंछूंगा, तुझे चुप कराऊँगा, ओ माँ !"

* * *

ए हो, कथा के ठाकुरो !

रमौलिया हुड़क-पुड़ी पर हाथ मारता है, बोल क्या निकालता है, कि लाख की उमर हो तेरी, मेरे वफौलवंशी वेटे, कि तुझे गोद खिलाने वाली मैया, तेरा दूध-कटोरा भरने वाली गैया को आकाश के इन्द्रराजा, धरती के भूमिया देवता दाहिने हो जाएँ।

अहारे, माता का हिया दुःखी देखा, जन्मधारी वन गया वफौलों के वंश का दीपक, कि चमत्कार क्या करने लगा, कि खुआँसी माता के आँखों के आँसू पोंछता, दुधैली-हँसी विखेरता, कैसे वरदानी

लगा, कि—"मैया रे, हिया का क्लेश दूर कर, कि एक वचन, दो वचन, तीन वचन—वचन टालूँ, नरक पड़ूँ। सुन, कि मैं तेरा वफौलवंशी-पूत तुझे वचन देता हूँ, कि तेरे वाइसों रीते दूध-कटोरों का दूध अकेला मैं पिऊँगा, कि तेरा दुःख विलमाऊँगा, अपना वल-विक्रम वढ़ाऊँगा, कि जिस गढ़ी चम्पावत नगरी के अन्यायी राजा ने मेरे पिता श्री वफौलों की हत्या कराई है, उसका सिर मूँड़ूँगा, कढ़ाई का टोपा पहनाऊँगा, मूँछ मूँड़ूँगा, उलटे तवे का मोसा लगाकर, मुँह काला करूँगा, कि उल्टे गधे की पीठ पर विठाऊँगा, गढ़ी चम्पावत नगरी में घुमाऊँगा।···तू धीरज धर, ओ माँ, कि मुझे अपने आँचल का दूध पिला। मैं तेरे दूध की लाज रखने को अपना शीश चढ़ाऊँगा, कि अपने पिता श्री वफौलों का गोत्र उजला, वंश नामधारी वनाऊँगा।"

लली दूधकेला के गए प्राण लौट आए, कि जैसे शीतल जल की धार पाकर मुरझाई लौकी-लता हरियाती है, ऐसे ही पूत के वचनों से दुखियारी माता का हिया हरसता है, गात पुलकता है।

28

काल की करवट : पवन की हिलोर

काल की करवट बदलती है, कि आकाश-अटारी के सूर्य, धरती-पिटारी की ऋतुरानी की चौकियाँ बदलती हैं, कि धरा-धूल की अन्नपूर्णा-फसल और गगन-चूल के कल्याणकारी बादलों की रंगत बदलती है।

पवन की हिलोर बदलती है, कि धूप-दीदी-छाँव-दीदी के सिरों के पिछौड़े, आँचलों के आँकड़े और पाँवों के रुनझुनिया-झाँवर बदलते हैं, कि बरखा बहूरानी के बुंदिल-दुकूल के बेल-बूटे बदलते हैं, तो गंगा मैया के गात का लहरिया-बाना और हरियाए-फुलियाए वन-उपवनों के दूब-मखमली पिण्डों का केशरिया-चोला बदलता है, कि तापसी-तपन, संन्यासी-शीत के चिमटे-कमण्डलु बदलते हैं कि यों ही संवत्सरी चैत मास आता है, कि वन-वृक्षों में बहार फूल जाती है। यों ही वर्षाभिषेकी अषाढ़ आता है, धान-मडुवा की खेती हरिया जाती है, कि तपती दुपहरियों में पहाड़ का ठण्डा पानी ब्रह्मा के कमण्डलु के अमृत से भी अधिक कल्याण-कारी बन जाता है।

एहो, काल की करवट, कि पवन की हिलोर, की ऋतुरानी के आसन बदलते हैं, कि कभी तापसी धूप, कभी बरखा-बहार, कि गंगा का पानी, खेतों का अन्न बढ़ता है।...और कभी हिमाली-बयार के स्वामी मंसीर-पूस-माघ-फागुन का चमत्कार, कि बर्फ के फूल सिर्फ इन्हीं चार महीनों फूलते हैं।

अहारे, जब ऋतुरानी के आसन बदलते हैं, तो बड़े-बड़े महलों की मालकिन गौरैया रानी क्या कौतुक करती है, कि घास-फूस के तिनके बटोरती है, अपने लिए एक छोटा-सा घोंसला बनाती है।

अहारे, अन्नपूर्णा खेती की ग्वालिन गौरैयारानी क्या करती है, कि औरों के हाथों से छूटे अन्न-दानों को बटोरती है और घोंसले में बैठी अन्न-दानों के आकार के अंडे देती है, कि उदर-लोमों का चँवर झुलाती है, और सृष्टि-रचना में वेदमुखी विधाता का भार बँटाती है। मोतिया महलों की मालकिन अन्नपूर्णा, खेती की ग्वालिन गौरैया के छोटे-छोटे पोथिल[1] च्या-च्याँ करते हैं, तो गोठ की गैया भी ब्याती है और दूध-कटोरों के भाग खुल जाते हैं और घर की बहूरानी की गोदी में भी बालक उतर आता है, कि जिसकी टिहाँ-टिहाँ किलकारियों, मुल-मुल मुस्कुराहटों से मिट्टी की घर-गृहस्थी सोने के स्वर्गलोक के सुखों को मात कर देती है।

एहो, मेरी कथा के ठाकुरो !

ऐसे ही, तुम्हारे घर की देली के ऊपर भी महलों की मालकिन, खेतों की ग्वालिन गौरैया रानी के घोंसले लग जाएँ; तुम्हारे गोठ की गैया का बछड़ा भी कुतकने-धुतकने लग जाए और तुम्हारे घर की घरिणी के आँचल में भी कुसुमकंठी बालक किलकारी भरने लग जाए, कि घोंसले की मालकिन गौरैया रानी के पोथिलों को पंख उगते हैं, तो

1. छोटे-छोटे बच्चे।

खेतों के अन्न की रखवाली[1] को दौड़ते हैं, कि गोठ की गैया का बछड़ा बढ़ता है, तो जूड़ा हिलाता है, हल को कंधा, खेत की मिट्टी को कल्याणकारी-लीक और बीज को उपजाऊ-ठौर देता है। ऐसे ही, घरिणी की गोदी का बाल-गोपाल बढ़ता है, तो गोदी से उतर कर, आँगन की, आँगन से आगे बढ़कर गाँव की, गाँव से आगे बढ़कर देश की शोभा बढ़ाता है, कि गौरैया रानी के पोथिलों, गैया के बछड़ों और मैया के बालगोपालों को रमौलिया की उमर लग जाए।

एहो, मेरी कथा के लाड़लो !

महलों की मालकिन, खेतों की ग्वालिन गौरैया रानी के जैसे फर-फरिया पंख ऋतुरानी को भी फूटते रहते हैं, कि दिवसपंखिनी ऋतुरानी के आसन बदलते हैं, काल की करवट और पवन की हिलोर बदलती है, तो घर-भखारों का अन्न बदलता है, गोठ-खिरकों की घास बदलती है। —कि, ऐसे ही रमौलिया की कथा के आँखर भी बदलते हैं और रमौलिया हुड़के की पुड़ी पर हाथ मारता, पम-पुक्की-पम-पम करता है, इस चन्द्र-मुखी रात्रि-वेला में।

1. किसानों का यह विश्वास है, कि गौरैया के पूत खेतों के अन्न को अपना ही समझते हैं, और पंख लगते ही, खेतों में पहुँचकर, फसल को नष्ट करने वाले कीड़े-मकोड़ों को खाना शुरु कर देते हैं।

29

जात का घोड़ा : औकात का बछड़ा

अहारे, पवन की हिलोर, काल की करवट वदली, कि सुमंगला लली दूध-केला के पूत की किलकारी भी वदल गई, कि कैसा वीरधर्मी वालक जन्मा है, लली दूधकेला की कोख से—

कि, वाँहों झुलाती है, तो कंधे चरमराने लगते हैं;

कि, झूलना झुलाती है, तो रामवाण की सतलट-रस्सियां टूटने लगती हैं;

कि, खटिया सुलाती है, तो साल-शीशम के पाए चटक जाते हैं;

कि, आंगन में खेल लगाती है, तो आंगन के चौड़े पथरौटों में दरा पड़ जाती है !

अहारे, लली दूधकेला की गोदी के वफोलवंशी-वालक को जो वाँ दाठ लगाए, उसे भोर की धूप, सांझ की वयार दुर्लभ हो जाए, कि का कैसा गुदगुदा, पिण्ड का कैसा पराक्रमी है, लली का लाड़ला पूत

बांज फल्यांट के वन में का देवदार-जैसा सारी महर-पट्टी में औरों से अलग ही दिखाई पड़ता है, कि घुनघुनिया[1]-चाल चलता है, तो घर की दीवारों को हिला देता है, कि ठुमुक-ठुमुक हिट्टी-हिट्टी करता है, तो उसकी पिनालू[2]-पात-चौड़ी पगतलियों की छाप पथरौटों पर उतर जाती है।

*　　　*　　　*

लली दूधकेला आज सुख से सरसों-सी फूल रही थी, कि आज ग्यारहवाँ-दिन लग गया है गोदी के बालक को, कि अब इसका कल्याणकारी नाम रखवा लेना चाहिए।

लली दूधकेला चली, कि अपने पिताश्री टुन महर से कहकर, ब्राह्मण न्यौतेगी, बालक का नाम धराएगी। आगे बढ़ रही थी, कि आँगन के पथरौटों को भारी वफौलवंशी मुलमुल मुस्कुराने लग गया, कि गात से गदराई लली दूधकेला ने दौड़कर गोदी में लेना चाहा, कि—दीठ न लगे वीरवंशी बालक को—खुद धरती से लग गई।

अहारे, गात का गुदगुदा, पिण्ड का पराक्रमी, रूप का रूपैला, नामों का भण्डारी वफौलवंशी कैसे मधुर मोदक-जैसे वचन बोलने लगा, कि—"मैया रे, मेरा नाम धरने को ब्राह्मण मत न्यौत, कि कहीं मेरे गात-पिण्ड को ब्राह्मण की दीठ लग गई, तो मेरा बल-विक्रम घट जाएगा, कि ब्राह्मणों के घरों में गात के दुबले, पिण्ड के पतले बालक जनमते हैं।… मैं वफौलवंशी-बेटा हूँ तेरा, कि तू मेरा नाम अभी अजित वफौल रख, कि मैं अपने पिताश्री वफौलों के बल-विक्रम की कीर्ति-ध्वजा को और ऊँचे गगन में फहराऊँगा।"

एहो, कथा के लाड़लो!

---

1. घुटन-टनों　　2. घुइयां।

आज टुन महर के आँगन में लली दूबकेला के लाड़-प्यार की धूप खिल-खिलाती है, कि 'मेरे अजित मेरे वफौलवंशी !' कहती है, बालक को आँचल से लगाती है; कि 'मेरे अजित, मेरे वफौलवंशी !' दुहराती है, स्वर्गवासी-स्वामियों के नाम के आँसुओं का आचमन करती है, कि ऐसी सुमंगला लली के मुख के वचनों से गोदी के बालक का बल-विक्रम बढ़ता है, कि ऐसी पतिव्रता नारी के आँसुओं से पितरों का तारण होता है।

अहारे, वफौलवंशी बालक दिन और, रात और शुक्ल-पक्ष के चन्द्रमा-जैसा बढ़ने लग गया, कि दूध-कटोरों के नाम पर टुन महर के घर की दोमनिया तीलियों की खिचड़ी कम पड़ने लग गई, कि जिस बालक की छवि देखने से आँखों का उजियाला, खेतों की हरियाली बढ़ती है, ऐसे बल-विक्रम के बाँके बालक को कर्मों के कंगाल टुन महर, मुट्ठी की कंजूस कलावती मामी की कुदृष्टि व्यापने लगी।

अरे, जो बालक दूध-कटोरों का भोग लगाता, उसे खड़मासों[1] की खिचड़ी खिलाने लगे, कि इस वैरी को पेटशूल उठेगा, तो हमारी छाती का शूल भी हटेगा।

* * *

अजित वफौल क्या करता था, कि कुश्ती खेलता था, तो कलावती के बेटों की हड्डी-पसलियों का मलीदा बनाता था, कि कबड्डी खेलता था, तो महरगाँव के बड़े-बड़े मुसटण्डे पहलवानों की कमर एक ही हाथ से पकड़ता था, हाड़-मांस एक लगा देता था !

---

1. अनदली-उड़द।

अहारे, दोमन खड़मासों की खिचड़ी का खवैया वालक अजित क्या करता है, कि जिस वन में जाता है, शेर गुगाट-डुडाट करना विसर जाते हैं, कि जिस अखाड़े में जाता है, महर-पट्टी के मह्रामल्ल घर से वाहर नहीं निकलते हैं, कि ऐसा वल-विक्रम का वाँका वफौलवंशी दुश्मनों की आँखों की ज्योति धुँधली, माता के आँचल की आस उजली करता है ।

एहो, कथा के लाड़लो !

दिन वीतते, मास लगते, मास वीतते, वरस लगते रहे, कि लली दूवकेला का लाड़ला पूत मुट्ठी से भींचकर पथरौटों का मैदा वनाने लग गया, कि सारी महरपट्टी में वाईस वफौलों का एक वफौल अजित ऐसे-ऐसे चमत्कारी पराक्रम दिखाने लग गया, कि कण्ठ-कण्ठ से यही कहावत फूटने लगी, कि 'जात का घोड़ा, औकात का वछड़ा ऐसा ही होता है ।'

30

चन्द-कुल का वंश-दीपक

भोर-वेला की फूल-पाती,

साँझ-वेला की दीप-वाती से इष्ट-पितरों के नाम के नैवेद्य-पिण्डों की परम्परा नहीं टूटती, कि सुमंगला धारणी के पुण्य उजागर होते हैं।

कथा-वेला के रमौलिया-कण्ठ से उसके कथा-स्वामियों के नाम के शकुन-आँखर फूटते हैं, कि उनकी वंश-वेलि फूलती-फलती है, तो रमौलिया के हिस्से की अन्न-मूठ बढ़ती है।

*　　　　*　　　　*

एहो, कथा के ठाकुरो !

उधर बारह बीसी की महरपट्टी में बफौलवंशी-बेटा अजित कुंवर

वन के शेर, मैदान के हाथियों को मात करता है, कि इधर अलकापुरी में महारानी भद्रा की गोद का राजकुँवर विमलचन्द मैया का हिया हुलसाता, नानी का गात पुलकाता है। नगर-हाट में निकलता है, तो बड़े-बड़े योद्धा शीश झुका देते हैं, 'जै हो, राजकुंवर विमलचन्द की।' पुकारते हैं। नदी-घाट में जाता है, तो तरुणियों के कण्ठ की 'लाड़ले राजकुँवर, प्यारे विमलचन्द' ! पाता है, कि बुरफाट[1] जाता है, तो शेर सियारों की पंगत में चलने लगते हैं।

ऐसे पराक्रमी राजकुँवर को पाकर, महारानी भद्रा की एक आँख सुखियारी, एक आँख दुखियारी है, कि एक पूत से पुत्रवंती हूँ मैं, गोद मेरी सुफल हो गई है, मगर कहीं राजकुँवर विमलचन्द की चर्चा अलकापुरी से गढ़ी चम्पावत नगरी तक पहुँच गई, तो ?

जिस रानी रुपाली ने बाईस भाई बफौलों का वंश-नाश कर दिया, वह इस राजवंशी कुंवर को कहाँ सुख से रहने देगी ? चार चांडाल मल्लों की सत्यानाशी-चौकी आजकल गढ़ी चम्पावत के राज-दरबार में लगी हुई है। कहीं कोई कुचक्र रच के रानी रुपाली राजकुँवर को गढ़ी चम्पावत नगरी न मँगवाले ? महाराज कालीचन्द तो उसके सैन-बैनों के वशीभूत चलुवा-चाकर बने हुए हैं !

अहारे, आज बाईस भाई बफौल होते, तो राजकुँवर विमलचन्द गढ़ी चम्पावत नगरी में नौलाख कण्ठों की जय-जयकार पाता, कि लाड़ले क्या कहते थे—'जिस दिन चन्द-वंश की सूनी-अटारी पर दीपक जलेगा, हम बाईसों बफौल गगन-गुंजैली दुंदुभि, पाताल-थरथरैया नगाड़े बजाएँगे !'

मगर, महारानी भद्रा सोचती है, आज चन्द-वंश का दीपक जलता है, तो हिया हरसता नहीं, कलपता है, कि इसे रानी रुपाली और चार चांडाल मल्लों की कोप-दृष्टि से कैसे सुरक्षित रखा जाए ? आजकल

1. वनांचल।

ठौर-ठौर महाराज कालीचन्द का संदेश फिर रहा है, कि 'जो माई का लाल चार भाई मल्लों को पराजित करेगा, उसे सेना का सेनापति, दरबार का दीवान बनाया जाएगा !'...राजकुंवर विमल तक पहुँचा यह संदेश, तो उसका राजवंशी रक्त उबलेगा, वश में रहना कठिन हो जाएगा, कि अभी तो उसकी खेलने-खाने की उमर है, चार चांडाल मल्लों के हाथ पड़ गया, तो फूल-सा मसल देंगे।

* * *

एहो, जब बयार बहती है, तो जलते-दीपक को आँचल-ओट करना पड़ता है, कि महारानी भद्रा ने चन्द-कुल के वंश-दीपक राजकुंवर विमलचन्द को आँचल से ढाँप लिया—"मेरे लाड़ले, जब मैं गढ़ी चम्पावत को छोड़कर, यहाँ को चली थी, तो रास्ते में भगवान् जागनाथ के जागेश्वर-मन्दिर में रात को दीपक[1] लिया था, कि चन्द-वंश की अटारी अँधियारी न रहे।...दुखियारी के आँसुओं को भगवान् जागनाथ का आशीर्वाद मिल गया, कि आज मैं पूतवंती हूँ, पितरों की आस उजागर

1. वृद्ध जागेश्वर और बाल जागेश्वर—दो मन्दिर हैं, अलमो[ड़ा] नगर से लगभग बीस-इक्कीस मील की दूरी पर। कुमाऊँ के लोगों [में] यह विश्रुति प्रचलित है, कि भगवान् शंकर के जागेश्वर मन्दिर में दी[पक] लेने से वंध्या को भी पुत्र-प्राप्ति होती है। सन्तान-सुख देखने की म[नो]लालसा लिए जागेश्वर के मन्दिर में, सात या नौ रात्रियों [तक] सन्तानेच्छुक-नारी अपने दोनों हाथों की अंजलि में जलता-दीपक [लिए] खड़ी रहती है और ईश्वर-प्रार्थना करती रहती है। इन दिनों [में] अखण्ड-व्रत भी रखना पड़ता है। इसी को 'दीपक लेना' कहते [हैं।] परम्परा अभी तक चली आ रही है। संतान प्राप्ति होने पर, [जागेश्वर] के मन्दिर में 'बधाई' दी जाती है।

कर रही हूँ।···और, मेरे पूत, मेरे कुँवर, वहीं एक साधु महाराज ने कहा था, कि 'बारहवें-वर्ष में राजकुँवर की लिए कुण्डली कल्याणकारी नहीं है, कि उसे साधु-वेश देना, वन-खण्डों में घुमाना।'···सो, मेरे पूत, अब तुझे संन्यासी-चोला धारण करना है, कि तेरी कुण्डली का अमंगल मेरे माथे पड़े, मैं तुझे वन-खण्डों में घुमाऊँगी। राजमहलों का सुख छोड़ूँगी, वन-खण्डों के कन्द-मूलों का आसरा लूँगी, कि जब तेरे अदिन मेरे आँचल पड़ जाएँगे—तुझे चन्द-वंश की सोनखण्डी-राजगद्दी पर चँवर झुलाऊँगी।"

धन्य-धन्य कहता हूँ, मैं रमौलिया, तुझ मन की मोहिला, आँचल की अन्नपूर्णा महतारी को, कि पूत को विपदा नहीं व्यापे, इसलिए उसका मुंड-मुँडवा लिया। मुकुट उतारा, गोखुरी-चुटिया रखवा दी, कि कान फड़वा दिए, सोने के कुण्डल उतारे, काठ के मुनुरे[2] पहना दिए। संन्यासी-चोला पहनाया, दाएँ हाथ चिमटा, बाएँ हाथ कमण्डलु पकड़ा दिया, कि स्वयं भी संन्यासिनी बनी महलों की महारानी 'भिक्षा दे, माई, भिक्षा दे, भाई !' कहती बीहड़ वन-खण्डों की ओर निकल गई, कि 'जब तक गढ़ी चम्पावत नगरी के राज-दरबार से चांडाल मल्लों की सत्यानाशी-चौकी नहीं हटेगी, तब तक महाराज कालीचन्द के राज-पाट पर से रानी रुपाली का तिरिया-शासन नहीं हटेगा, तब तक अपने पूत—चन्द-कुल के वंश-दीपक—को आँचल-ओट से परे नहीं होने दूँगी।'

31

कथा-वेला को अँखरौटो के अदिन

ए हो, जलती दीप-वाती पर वनात-पंखिनी पुतलियों का हेरा-फेरा लगता है, कि चलती कथा-पाती पर तुम कथा के रसिकों की नयन-ज्योति, हिया-हिलोर का हेरा-फेरा लगता है, कि इस वीतती, चन्द्रमुखी रात्रि-वेला जिन आँखों में सुख के सपनों का डेरा लगा करता था, आज चलती कथा-पाती की वेना उन्ही आँखों में रमौलिया अपने कथा-आँख का अंजन अँजो रहा है, कभी कथा-स्वामियों के नाम के गंगा-ज से गीली और कभी वफौलवंशी-चन्दवंशी वीर वालकों की किलकारी हर्ष-आवली होती इन आँखों की ज्योति कभी धुँधली नहीं पड़े, रमौलिया अपनी वाणी के वचनों का सत् सौंपता है, कि—

सत्, रे सत् !

सत् रह जाए गढ़ी चम्पावत की चौदह हाथ चौड़ी सड़क का, कि चम्पावत की चण्डिका का संदेश, हाट की कालिका के दरबार में, कि सोर के लिंगावतारी सैमराजा का संदेश, घाट के शिवशंकर के दरबार में पहुँचाती है।

एहो, कथा के लाड़लो, चौदह हाथ चौड़ी सड़क का काम क्या होता है, कि तराई-भावर का गुड़-चना शौक्याण देश, शौक्याण देश का शिलाजीत-सोहागा तराई-भावर पहुँचाती है। उत्तराखण्ड के यात्री को दक्षिणावर्त्त और पूर्वियाखण्ड के यात्री को पश्चिमीखण्डों की सैर कराती है, कि जिस चौड़ी सड़क पर तुम्हारे पाँव पड़ें, वहाँ कंकर-काँटों की छाया न पड़े।

कि, ऐसे ही रमौलिया के मुख से निकली कथा-वेला की अँखरौटी का काम क्या होता है, कि कथा के रसिकों को पंचाचूली की गुरुस्थली से गढ़ी चम्पावत नगरी के राजा कालीचन्द; राजा कालीचन्द के दरबार से वीरगढ़ी बफौलीकोट और बफौलीकोट से महरगाँव; महरगाँव से अलकापुरी की कथा-यात्रा करवाती है, कि चित्त-चित्त का क्लेश हरती है, चरण-चरण के काँटे बीनती है, कि सुख के शब्द, वैभव के वचन देती है।

...मगर, आज यह अज्ञानी रमौलिया किस रहते सिर-छत्र के चरित्र-चटुल पर-पुरुषों की संगति करने वाली चांडाली का मुख देख कर आया, कि उसकी कथा की अँखरौटी को बेर-बेर अदिन व्याप रहे हैं, कि कथा-स्वामी बाईस-भाई बफौलों के नाम का गंगा-जल आँखों से अभी पूरा नितरा भी नहीं था, कि...

राम, हे राम !

शिव, हे शिव !

—कैसे रमौलिया अपने हिया का क्लेश झेले, कि जिन चन्दवंशी राजाओं के राज में कुमाऊँ-खण्ड के नर-नारी छत्तीस व्यंजनों का भोग, सुखियारी निंदिया की पलक लगाते थे, उन्हीं के वंश में उपजे राजा

कालीचन्द के राज-पाट में घर-घर, घाट-घाट, गाँव-गाँव, हाट-हाट में हाहाकार मचा हुआ है, कि काली कुमाऊँ-पाली पछाऊँ के नर-नारी धरती धाप मारते हैं, करुण विलाप करते हैं, कि आज अन्यायी राजा कालीचन्द के राज में हमारा रखवाला कोई नहीं रह गया है, कि मुख के अन्न-ग्रास छिन गए हैं, इस पातकी राजा के राज में !

रमौलिया रे, तेरी कल्याणकारी कथा की कुंडली में किस सोहिनी-मोहिनी तिरिया के यार, चतुर्थावस्था के चमार विधाता ने सत्यानाशी-आँखर लिख दिए, कि तेरी कथा की अँखरौटी के अदिन उसी को लग जाएँ, कि उसे राह चलने को लाठी, देह पसारने को विस्तरा नहीं मिले, कि न उपन्याठी विधाता कमलपत्री-सेज पर सोएगा, न गात की गुदगुदी —गदराकर, मोहिनी-सोहिनी तिरिया के सपने देखेगा !

७

32

चांडालों की चौकड़ी, अन्न-वालों का विध्वंस

पूर्विया मल्ल, पश्चिमी मल्ल,

कि—

उत्तरी मल्ल, दक्षिणी मल्ल—

एहो, एक गात के दो टुकड़े सिरखण्डी राहु, धड़खण्डी केतु जिस अभागे की जनम-कुंडली में अपना आसन लगा देते हैं, उसके गाँठ के बैलों से लेकर, घर-भखारों की अन्न-मूठ तक का बीज-उजाड़ करते हैं, कि उसे बिना अपच के ही प्राणघाती पेटशूल उठता है, कि उसका अटारी का दीपक बिना तेल-बाती का रह जाता है और जिस भरपूर भण्डारी घर में साल-जमाल बासमती के भात का भोग लगा करता था,

उसमें अष्टमी-नवमी के श्राद्धों में पितर बिना पिण्ड पाए ही लौट जाते हैं !

राम, हे राम !

शिव, हे शिव !

गढ़ी चम्पावत नगरी की कल्याण-कुंडली के ऐसे कुदिन आए, कि उसमें चार चांडालों का एक अन्यायी आसन लग गया था, कि चार मन का कलेवा, आठ मन का भोजन करते थे, कि बावन गज का चोला गात अठारह गज की टोपी सिर पर पहनते थे, कि गढ़ी चम्पावत की बावन हीरों की राज-सभा के विशाल प्रांगण में चौमसिया-साँड़ों को मात करने वाली करमचण्डाली कुश्तियाँ खेलते थे और सिर का टोपा, गात का चोला धूल में मिला देते थे, कि दूसरी भोर को फिर नया टोपा, नया चोला माँगते थे सत्यानाशी !

हरि, हे हरि !

ऐसा दिन दिखला गया, बुरे दिनों का फेर—

जहाँ मोतिया महल था, वहाँ धूल का ढेर !

एहो, जिस संगमरमरी स्तम्भों से चमचमाती राज-सभा में बनात मखमल का बिछौना बिछा रहता था, कि जिस बावन हीरों की चन वंशी-राज-सभा के बनात-मखमलिया-प्रांगण में चतुर-सुजानों, सरद दीवानों की पंगत बैठा करती थी और धरती की माटी, प्रजा परिपाटियों को धन्य-धन्य करने वाली मंगलकारी वार्ताएँ होती थीं उसी कल्याणकारी राज-सभा को चार चांडालों की चौकड़ी ने हुं फुंकार का धौंसा बजा-बजाकर के, कमर-कमर गहरे गड्ढे खोद क मल्ल-अखाड़ा बना दिया था, कि अब राजा कालीचन्द सचमुच ही कलुवा चाकर-जैसा हारमान हिया, पलायमान पुरुषार्थ लिए एक बैठा रहता था ! अब अत्याचारी मल्लों ने क्या शर्त बाँध रखी थ जबतक हमारी टक्कर का योद्धा नहीं ढूंढेगा, मय अपनी राज बिना सिर-छत्र-गात-चोले के दिन-भर हमारे मल्ल-अखाड़े

रहेगा !···गरमी लगेगी, तो तू चँवर झुलाएगा, कि प्यास लगेगी, तो तेरी राजरानी ताम्र-कलशों को अपनी कलाइयाँ लगाएगी, कि जब तक इस गढ़ी चम्पावत नगरी में हम चार भाई मल्ल रहेंगे, तुझे सुख की पलक नहीं झपकाने देंगे, गात का चँवरिया, घाट का धोबी और मल्ल-अखाड़े का चाकर बनाकर रखेंगे, कि तू भी जरा याद करेगा, कि पंचनाम देवों के मंत्र-पुत्र मल्लों को अपने दिशा-द्वारों का पहरुवा दरवान बनाना कैसा होता है !'

एहो, चार चाण्डाल मल्लों के अन्यायी आसन जब से लगे थे गढ़ी चम्पावत नगरी में, कि उसी दिन से राजा कालीचन्द के राज-पाट के अदिन भी आ गए थे, कि एक बरस बीता, दो बीते। बीतते-बीतते यह बारहवाँ-बरस लग गया था, कि अब सारी काली कुमाऊँ-पाली पछाऊँ का एक छत्र स्वामी राजा कालीचन्द चार मल्लों का कलुवा चाकर बन गया था, कि बीते ग्यारह वर्षों में राजा कालीचन्द ने माल देश के भरड़, बुक्शाड़ देश के जादूगर न्यौते थे, कि सौन डुंगर के सौन पैग, डोटीगढ़ी के धामी न्यौते थे, कि 'जो कोई पिता का पूत, माई का लाल, मेरी गढ़ी चम्पावत में आकर चार मल्लों की चौकी यहाँ से उखाड़ेगा, उसे गात का मखमलिया-चोला, शीश का सोनखण्डी मुकुट और हाथ का रजतखण्डी खड्ग दूंगा, कि मेरी बावन होरों की राज-सभा में सबसे ऊँची चौकी उसी को मिलेगी, और उसके वंशजों में से किसी को पट्टी का पटवारी, किसी को गाँव का मुखिया, किसी को तहसील का तहसीलदार, किसी को कोट का कोटपाल बनाऊँगा, कि किसी को सेना का सेनापति, किसी को लाव-लश्कर का अधिकारी और किसी को भण्डार का भण्डारी बनाऊँगा !'

और राजा कालीचन्द के ये वीर-न्यौतार-वचन बिजेसारी बजंत्रियों के ढोलियों और तेलकूट नगाड़ों के चोपदारों के द्वारा दिशा-दिशा, द्वार-द्वार घुमाए गए थे, कि घिनाकुटी-घिनान्-तिनान्···

है कोई पिता का पूत ?

कि, दन्-दणाक्कि-दन्-दन्...

है कोई माई का लाल ?

और विजेसारी वजंत्री, तेलकूट नगाड़े पर सौंटे पड़ते थे, कि वीर-धर्मी पैगों के कमर की मंसलौटी कंधे की ओर सरकती थी, कि कंधों पर की चमलौटी कमर की ओर उतरती थी !

मगर, चार भाई मल्लों के साथ कुश्ती खेलने जो भी पहुँचा, उसी की उन चाण्डालों ने ऐसी दुर्गति वनाई, कि सिर मुट्ठी से पकड़ा, अनार-दाने जैसा फोड़ दिया, कि कमर पकड़ी, तो ऐसी पकड़ी, कि हड्डियों का मैदा, माँस का मलीदा वनाके छोड़ दिया ! भाल के भरड़, वुक्शाड़ के जादूगर और सीन डुंगर के सीन, डोटीगढ़ी के धामियों के रुण्ड-मुण्डों को चार दिशाओं में उछाल दिया, कि—एहो, गढ़ी चम्पावत नगरी के लोगो ! हमारे जन्मदाता पंचनाम देवों ने कंदुक-क्रीड़ा की जो नई किस्म सिखलाई थी, उसे अब हम तुम्हें प्रत्यक्ष दिखला रहे हैं !'

हरि, हे हरि !

मर जाए उन पंचनाम देवों की गुरुखली के फौड़े-चिमटे और तिमूर-सौंटे सँभालने वाला, कि जिनके उपजाए अन्यायी मल्लों ने काली कुमाऊँ, पाली पचाऊँ के पहलवानों की काया को ऐसा कम्पायमान वना दिया, वड़े-वड़े योद्धाओं का मैदा-मलीदा वना करके, कि जिन पहलवानों की कमर की मंसलौटी, कंधों की चमरौटी नगाड़ों का नाद सुनते ही समुन्दर की लहरों-जैसी लोट लेती थी, उन्हीं पहलवानों का कलेजा मल्लों का नाम सुनते ही ठण्डे पानी में छोड़े हुए गरम कोयले-जैसा चरमराने-छरियाने लग गया !

* * *

आज फिर चारों चाण्डाल गढ़ी चम्पावत नगरी की राज-सभा में कुश्ती खेल रहे थे। राजा कालीचन्द की सातों रानियाँ उनको चँवर

झुलाने, पानी पिलाने की चाकरी में लगी हुई थीं और राजा कालीचन्द तथा उसकी बावन होरों की राज-सभा के दीवान-सरदार उनकी तेल-मालिश में लगे हुए थे, कि चारों चाण्डाल राजमाताओं को छेड़ने लग गए, कि—"एहो, सुंदरियो ! तुम्हारे हाथ के ताम्र-कलशों का जल पीते हैं, तो हमारे कण्ठ अघाते नहीं हैं, कि तुम्हारी ताम्रवर्ण-मुखाकृतियाँ और तुम्हारे कुसुमिया गातों की लोच-लचक देखते हैं, तो हमारी आँखें अघाती नहीं हैं !...सुनो हो, सुन्दरियो ! कहने को तो कथुवा स्वामी तुम्हारा, यह हमारा कलुवा चाकर राजा कालीचन्द है, मगर असली स्वामी तो तुम्हारे हम चार भाई मल्ल ही हुए, कि ताम्र-कलशों का जल तो तुमने खूब पिलाया, कि चँवरगाई की पूंछ का चँवर तो तुमने खूब झुलाया, मगर अब अपने आँचल-कलशों का अमृत कब पिलाओगी, कि अपनी शीशलटी का चँवर कब झुलाओगी ?...कि, तुम्हारा रूप-सिंगार देखते हैं, तो हम चारों भाइयों का चित्त चलायमान होता है !..."

ओहो रे, चौरस्ते के चमार, हुड़क्यानी के यारों-जैसे चाण्डाल मल्ल खिल-खिलखिलखिलाते हैं, कुवानी बोलते हैं, कि लाज से शीश झुकते हैं, कान कलपते हैं !...कि, जैसे धान-गेहूँ के खेतों में कँटीला उपजता है, ऐसे ही, पंचनाम देवों के भभूत-गोलों से कुजात-कपूत मल्ल उत्पन्न हो गए, कि मल्ल-धर्म को भी अब कलंकित करने लग गए, कि कन्या-नारी की असत् कल्पना-मात्र से भी वीर-धर्मी पुरुषों का पौरुष खण्डित--कलंकित हो जाता है !

और ..

जिस डोटीगढ़ी की रुपाली रानी को अपने सत्यानाशी सरूप-सिंगार के आगे आकाश-मड़ी का सूरज भी धुंधला लगता था, जिस चपला-चंचला-चटुली रानी के लिए राजा कालीचन्द ने मणिहार बुलाए थे, मणिहारकोट बसाया था, कि सुनार बुलाए थे, सुनारकोट बसाया था और धोबी बुलाए थे, धोबीघाट बसाया था, कि मंगलहाट का बाजार और एकखण्डी महल बनाया था—आज वही एकखण्डी महल की मालकिन

रानी रुपाली मल्लों को ताम्र-कलशी का जल पिलाते-पिलाते, मोरपंखी-चँवर झुलाते-झुलाते गात की छीन, मन की मलीन पड़ गई ! ··

कि, जिस रुपसी रुपाली रानी की कलाइयाँ गोरी गंगा की लहरों में लिलुरती-हिलुरती मछलियों-जैसी मणिहारों को परचेत कर देती थीं; कि हस्ति-दंतों की चूड़ियाँ कभी किसी अँगुली में पहनाते थे, कभी किसी अँगूठे में—आज उसी कमल-नाल को मात करती कलाइयों वाली रानी रुपाली की बाईस जात के तेलों की सिचाई खाने वाली लटी का रेशमी धमेला पकड़के खींच लिया, कि—"एहो, रानी रुपाली ! अपनी सौतों में से तू कंकरों के बीच के मोती-जैसी अलग ही दिखाई पड़ती है, कि आज तेरा कथुवा स्वामी और हमारा कलुवा चाकर राजा कालीचन्द ठीक से मालिश के हाथ नहीं मार रहा है, तो इसे हम दण्ड यह देते हैं, कि यह कल से आधी दाढ़ी, आधी मूँछ लेकर हमारे अखाड़े में आया करेगा !··· और तू अपनी हल्दिया हथेलियों से आज हमारे गात सुरसुरा दे, कि हम तेरे केशरिया-कपोलों को सुरमुराएँगे !"

एहो, जब कण्ठ सूखता है, तो जल की कलशी याद आती है, कि जब विपदा पड़ती है, तो परमेश्वर याद आते हैं और जब करनी के फल भुगतने पड़ते हैं, तो अपने पुराने पाप याद आते हैं, प्रायश्चित्त के लिए मन कलपता है। आज गान की चपला, आँख की चंचला और चरित्र की चटुली रानी रुपाली को भी बाईस भाई बफौलों के मीठे वचन याद आने लगे, कि गढ़ी चम्पावत के लाड़ले पूत क्या बाल-वचन बोलते थे—राजमाता, हम तुम्हारे शीश को चँवर झुलाएँगे, चरणों को दण्डवत सौंपेंगे !

गाई को लात मार थी, तो आज कसाइयों के हाथ पड़ गई, कि चार चाण्डालों की चक्की-पाट-चौड़े हथेलों की रगड़ से आज रुपाली रानी के केशरिया-कपोलों की सोनपीन-परत उतरने लग गई ! बाईस-बाईस कंघियों से सुलझने वाली लटी के सुनहले-बाल उखड़ने लगे, रानी रुपाली का कुसुमिया-शीश दुखने लग गया—"हे राम, हे प्रभु ! हे राम,

हे प्रभु !"

बावन होरों में ऊँची चौकियों पर बैठने वाले दिवान-सरदारों में से कई लोग गरज उठे—"बस करो, रे अन्यायी मल्लो ! और अधिक पाप के घड़े मत भरो, पंचनाम देवों के माथे पर कलंक के टीके मत लगाओ !"

एहो, धरम के वचन सुनने से पापी मल्लों की क्रोधाग्नि और ज्यादा भभक उठी, कि—"चुप रहो, रे गढ़ी चम्पावत के कुकुरो ! एक वचन बोल गए हो। दूसरा बोलोगे, तो आँखों को सिर की गुद्दी के भीतर और जीभ को गरदन के भीतर हाथ डालकर खींच देंगे !···अरे, ऐसे ही पुण्यात्मा गढ़ी चम्पावत के सरदार, सेनापति हो तुम, ससुरो, तो आओ ! आओ, हमारे साथ कुश्ती खेलो, कि हम तुम्हारी रानी के केशरिया कपोलों की गुदगुदी बिसार देंगे, तुम्हारे रुण्ड-मुण्डों का खेल खेलेंगे !"

*　　　*　　　*

एहो, ऐसे चार चमार चाण्डालों की चौकड़ी बैठी गढ़ी चम्पावत नगरी में, कि चार मन का कलेवा, आठ मन का भोजन करते हैं, कि अठारह गज के टोपे, बावन गज के चोले पहनते हैं। काली कुमाऊँ-पाली पछाऊँ की प्रजा ने हल की मूठों के साँचे अपनी हथेलियों पर उतार-उतार कर जिन अन्न-बालों को उपजाया, उनका विध्वंस करते हैं, कि सारे कुमाऊँ खण्ड में ऐसा अन्यायी राज चल रहा है चाण्डाल-चौकड़ी का, कि जिस धरती-माटी का अन्न खाते हैं, उसी के राजा को चाकर, उसी की राजमाताओं को चरण-दासी बनाते हैं !

···ओहो रे, काली कुमाऊँ, पाली पछाऊँ की प्रजा तो हाहाकार करती थी, आज चपला रानी रुपाली भी विलाप करने लग गई, कि—"एहो, विधाता ! अपने पापों का फल बहुत भोगा मैंने, अब तो क्षमा करो, कि बाईस भाई बफौलों का वंश-नाश किया था, तो आज मेरे ऐसे कुदिन आ गए हैं, कि मुझ गढ़ी चम्पावत रानी को ये चार चाण्डाल

हुड़क्यानी-मिसरानी की तरह छेड़ रहे हैं !—हे, राम ! हे, परमेश्वर ! हे, राम ! हे, प्रभु !"

हरि, हे हरि !

गढ़ी चम्पावत की बावन होरों की राज-सभा के पराक्रमी सेनापति-सरदार भी बालकों-जैसे बिलबिलाते हैं, कि—"हे परमेश्वर ! हे, प्रभु !"

दया-धरम और विद्या के धनी जोशी विज्ञानचन्द्र भी टुल-टुल आँसू गिराते हैं, कि—"हे, शिवशंकर ! हे, विधाता !"

और छत्रधारी-खड्गधारी राजा कालीचन्द भी परदेश की यात्रा में लुटे हुए मुसाफिर-जैसा विलाप करता है, कि—"हे, राम ! हे, प्रभु ! हे, राम ! हे, प्रभु !"

हरि, हे हरि !

राम, हे राम !

ओहोरे, परलोक-परचेत-जैसा हुड़क हाथ में लिए गढ़ी चम्पावत की राज-सभा का हाहाकार क्या देख रहा है, रे रमौलिया ?

मार तो जरा थपथुकिया-थाप हुड़क-पुड़ी पर, कि जरा अपने कथा-स्वामी बाईस बफौलों के वंश-सूरज अजित बफौल के बल-विक्रम को भी अपने मुख के आँखर दे तो, कि यहाँ चार चाण्डालों की चौकड़ी अन्न-वालों का विध्वंस और राजमाताओं का अपमान कर रही है, कि उधर महरगों की माटी में बफौलवंशी-बालक कैसे अपने वंश की वीरधर्मी-परम्परा को उजागर कर रहा है ?

❀

कि मध्यमा अँगुली के सिरे से दोनाल बन्दूक की जैसी चोट मारता है, तो एक घट-पाट को दूसरे घट-पाट से टकराता है ! लोग हाहाकार करते टुन महर के पास जाते हैं, कि—"एहो, महर जी ! आज किस महादैत्य को घटवार बनाके तुमने भेजा है, कि वह गेहूँ-पिसाई कहाँ करने देगा, घट-पाटों की गिट्टी-खिलाई कर रहा है, कि हम अन्न के बोरे उसी की शरण छोड़ आए हैं, कि कहीं वह हमारी ही पिसाई न करदे !"

अहारे, घट की घटवारी छुड़ाता है, टुन महर, कि जब से यह दूधकेला अभागिनी का कपूत उपजा है, तब से घट की भाग आनी भी बन्द हो गई है, कि अब इसका पर्वत-जैसा पेट हम कैसे भरेंगे ?

अपने नाना टुन महर की बातें सुनता है, तो बफौलवंशी-बालक मुल-मुल मुस्कुराता है, कि—"बुबू, बुबू ! आपकी पोपली मुखड़ी से निकले वचन मेरी समझ में ही नहीं आते हैं, कि, शायद, नटौरे-जैसे मार-मारकर मेरी दीठ उतारते रहते हैं ?"

और 'बुबू, मेरे बुबू !' पुकारता, अजित बफौल टुन महर की पीठ पर सवार होने लगता है, कि एक ही धचके में टुन महर एक पहर तक के लिए परचेत हो जाता है, कि चेतता है, तो फिर मसूर की दाल-जैसी दलता है—अरे, बाईस भाई बफौल तो चले गए, मगर एक यह बाईस कपूतों का एक कपूत मुझको सताने को छोड़ गए !

और टुन महर ने क्या प्रपंच रचा, कि बारह बिसी गाय-बकरियों का ग्वाला बनाकर, लली दूधकेला को बाँजवनी-घाटियों-चोटियों पर फिरने को भेज दिया, कि—"सुन हो, लली दूधकेला ! तेरे इस दुष्ट पूत ने सारी महर-पट्टी में त्राहि-त्राहि मचा दी है, कि अच्छे-अच्छे पहलवानों को आँखों का काना, हाथ-पाँवों का लूला बना देता है, यह तेरा बाईस हाथियों का एक हाथी-जैसा जबरजंड पूत !—'हो गया, मीत, भर पाया !' वाली कहावत अब मेरे सामने भी आ गई है। अब तो, लली, तू अपने इस लाड़ले को हमारे महर गांव से जरा दूर ही रख। बारह बिसी गाय-बकरियों का डाँकर है हमारा, इसको बाँज-बाँज-फँल्याँट के घने वनों में

ले जाओ तुम माँ-बेटे और छाछ पीके पेट पालना, नौनी जमाकर के हमारे लिए भेज देना।"

और बारह बिसी गाय-बकरियों का ढाँकर विकट वनों में लेजाकर, अजित बफौल ने क्या कौतुक किया, कि वन-मृगों को पकड़ने लगा, और गाय-बकरियों का दूध-दही तथा वन-मृगों की बोटियाँ खाने लगा, कि खड़मासों की खिचड़ी खाते-खाते रूखी पड़ी हुई उसकी देह दिन और, रात और, चुपड़ी-चमचमान होने लगी, कि उसकी देवदार-जैसी काया बाँस-ऊँची, काँस चौड़ी होती चली गई।

लली दूधकेला सरसों-तेल का हाथ फिराती थी, कि अजित की बाँहों में लुढ़कते चमलोढ़े रामगंगा-किनारे के गंगलोढ़ों को मात करते थे, कि हाथ फिसलता था, लली दूधकेला का हिया हरसता था, कि—पूत मेरा स्वामियों पर ही उतर रहा है!

अहारे, बल-विक्रम के बाँके, करतबों के धनी वीरवंशी बालक अजित बफौल ने एक महीने-भर बारह बिसी गाय-बकरियों का ढाँकर जंगल-घाटियों में चराया और बावन बिसी वन-हिरन घुरड़-काँकड़ और शारों का शिकार किया, कि उनके हाड़ बड़े-बड़े बोरों में भरकर, सहेज कर रखे।··· और एक दिन क्या बालक-करनी करी, कि लली दूधकेला को हिसालू-घाटी की कुटिया में सोई छोड़—सीधे अपने नाना टुन महर के महर गाँव में पहुँच गया। आगे-पीछे उसके जंगल के शेरों का ढाँकर चल रहा था, कि सारी महर-पट्टी में चारों ओर एकदम हाहाकार होने लग गया, कि 'आज हम महरों के वंश-उजाड़ की वेला समीप आ गई है, कि बाईस भाई बफौलों का कपूत अजित बफौल सारे जंगलों के नरभक्षी शेरों का ढाँकर लिए महर-पट्टी पहुँच गया है!'

"एहो, मुखिया टुन महर जी! एहो, दादा टुन महर जी!"

···ओहोरे, टुन महर के घर-आँगन में महर-पट्टी के महरों का मेला जुड़ आया, कि 'एहो, मुखिया टुन महर जी! दया करो, दुख हरो, कि आज तुम्हारा अत्याचारी नाती जंगल के शेरों का ढाँकर न्यौत कर ले

आया है, कि अब जंगल के शेरों की विकराल दाढ़ों के वीच से एक भी महर सावित नहीं निकलेगा !'

टुन महर ने देखा, कि अजित बफौल ने दूर से ही वन-मृगों के हाड़ों से भरे वोरे उसके आँगन में फेंक दिए, कि उन हाड़-भरे वोरों को देखते ही, टुन महर मुँह से गाज-जैसा छोड़ने लगा, कि—हे भगवान्, यह अन्यायी विकट वनों में जाएगा, तो जंगल के शेर इसे अपने आप खाएँगे, यह सोचकर, मैंने इसे विकट वनों में गाय-वकरियों का ढाँकर चराने भेजा था, मगर यह वंश-में का-वज्रदंती-जैसा शेरों का ढाँकर साथ साथ लगा लाया है, ! इसने और इसके पीछे लगने वाले कुत्ते जंगल शेरों ने मेरा वारह विसी गाय-वकरियों का ढाँकर खाकर उजाड़ दि है और यह करम-चण्डाल वोरों में भर-भर के मेरी वारह विसी गा वकरियों के हाड़ मेरे हिया में चिता-जैसी धधकाने को ले आया है !

…चिमड़िया गात, चिमचिमिया नेत्रों वाला वूढ़ा टुन महर कुमति की कल्पना करने लग गया, कि खैर, वल-विक्रम में तो इस अन्य बफौल-पूत को वश में कर पाना कठिन ही है, मगर कहाँ इसकी दु वय, वालक-वुद्धि और कहाँ मैं वाल-फूला, गात-भूला सौ वर्षों का देखा हुआ टुन महर, कि मेरी वृद्ध-वुद्धि के वाँके प्रपंचों के आगे वश कहाँ चलेगा ?

अनार-फूल फूलता है, फलता है, तो चखने वाले की रसन से लटपटाती रह जाती है, कि एक फून धतूरे का भी फूलता है, विषैले वीज देता है, कि जिनको चखने से लाल अधर जाते हैं !…

कि, एक ऐसा धंतूरे-जैसा फूला अन्यायी वूढ़ा टुन महर, सफेदी से श्मशान-घाट की शोभा वढ़ाने वाले सिर को लखु लपेट में आया हुआ-जैसा हिलाने लगा, कि "उसी वाँस और उसी वाँस का लट्ठा, उसी दूध का दही है, उसी दही क

विपरीत वुद्धि का टुन महर वूढ़ा गिद्ध-जैसी लम

हिलाते हुए क्या सोचने लगा, कि—(द, गरदन-तोड़ अनियारकोटी आँधी उसी दिशा से गुजरे, जहाँ से टुन महर आखिरी बरस में पहुँचे हुए पागल हाथी-सा आगे-पीछे चलता हो!)—उन्हीं वचन-बाँकुरे बाईस भाई बफौलों का ही वंशधर तो है, यह अजित बफौल भी, कि जो पर्वत-जैसे ऊँचे-गरुए वचन देते थे, तिल-भर भी पीछे नहीं हटते थे, कि जिन्होंने पंचनाम देवों के मंत्र-पुत्र चार भाई मल्लों को गढ़ी चम्पावत के दिशा-द्वारों का दरबान बनाया था?...कि, इसमें भी तो वही बफौलिया-बाँकपन जनम-संस्कार का होगा, कि पैगों के पितर जनम-संस्कार अपने वंशजों में छोड़ जाते हैं, कि मरण-संस्कार अपनी मिट्टी के साथ ले जाते हैं!...तो आज इस बफौलवंशी-विजवार से अपना बैर ऐसे निकालूंगा, कि शेरों का ढाँकर हाँकने वाला यह कपूत खाट के खटमल की मौत मरेगा!...

* * *

"क्यों हो, बुबू? मुझे देखकर, एकदम सोच-विचार में जैसे क्या पड़ गए हो?"—आँगन-पथरौटों को चरमराता अजित बफौल बोला—"इन शेरों के ढाँकर को देखके मत चौंकना हो, बुबू, कि इन्हें तो मैं यहाँ सिर्फ इसलिए फिराने को लाया हूँ, कि जरा आपको भी मालूम हो, कि बफौलवंशी-बालक कैसे ढाँकरों को चराया करता है! और, हो मेरे महर बुबू..."

दरे, टुन महर की अर्थी को कंधा लगाने वाले कठेरुओं को प्यास लगती बेला पानी, भूख लगती बेला अन्न-दाना न मिले, कि सत्यानाशी बुड्ढा कैसे दुष्ट वचन बोलने लगा—"हट्ट, बफौल-कुल के कायर कपूत! अपने इस कायर-कलंकी मुँह से मुझे अब बुबू-बुबू मत कहाकर, कि आज तक तो तुझ कुजात की बातों को बालक समझकर सहन करता रहा!...अरे, 'बफौलवंशी-बफौलवंशी' चिल्लाकर, अपनी छाती को

फुग्गे-जैसा फुलाने वाले कपूत !···अगर, तुझमें जो वाईस भाई वफौलों का रक्त-बीज होता, तो तू अपनी माता लली को वन-वन भटकाता, जंगली कुत्तों का ढाँकर फिराता अपनी कलंकी सूरत मुझे दिखाने यहाँ मेरी महरपट्टी में नहीं लौटता !···अरे, मेरी बूढ़ी देह को तो तू अपनी साँड-सींगों-जैसी आँखें दिखाएगा ही, मगर जात-औकात का होता, वफौलों की वीर-प्रसू-वंश-वेलि का सच्चा फल होता, तो गढ़ी चम्पावत नगरी में जाकर चार भाई मल्लों को आँखें दिखाता, कि जिन्होंने तेरे जनमदाता वाईस भाई वफौलों के हाथों पराजय का वैर सारी काली-कुमाऊँ, पाली पछाऊँ की प्रजा से निकालना शुरू कर रखा है, कि घर घर में त्राहि-त्राहि मची हुई है !···होता वफौलवंशी तू, तो मुझ स वरस के बुड्ढे को सताने की जगह, गढ़ी चम्पावत के राजा कालीच और रानी डोटियाली से अपने पितर वफौलों का वैर चुकाता !··· मारता है ? मार मुझ बुड्ढे को और क्या पराक्रम हो सकता है, कायर-कपूत से ? लाज ही तुझे होती, तो आज तेरी पितर-धरती वफौ कोट ही वंजर नहीं पड़ी रहती, कि वफौलों के गोठों की गाय-वछ का ढाँकर घास-चारे के विना नहीं उजड़ता, कि अजरगूंठ अ पीठ पर कौवे सवारी नहीं करते !···मगर, तू कपूत क्या करेग यहाँ के विकट-वनों में फिर, मौज कर ! और ले, आ, मुझ बुड्ढे म वृद्ध-हत्या का पातक और अपने सिर पर ले ले, कि तेरे वीरधर्म पितरों की परिपाटी ऐसे ही उजागर होगी !"

हरि, हे हरि !

दुन महर के वचन-वाणों से विधता वफौलवंशी-वालक खड़ा, क्रोध और अपमान के आक्रोश से तिलमिलाता पथरी से पीसने लगा, कि जेठ दुपहरी की धूप में धरी तांबे तमतमाई उसकी मुखाकृति की रक्तवर्ण छवि वन-फूलते फूलती रतंगियाली की वेल की रंगत को मात करने ल हाट की कालिका मैया के मंदिर के गोल गुम्बद-जैसे सूर्य

परात-चौड़ी चुटिया के वालों से लेकर, केले के सपसपे खम्भों को मा करने वाली पिंडलियों तक वीरवंशी-रक्त उवाल खा गया, कि—ताम्राधारी चाम्रपुड़ी का तेलकूट नगाड़ा सानए-सोंटों की चोटों से गरजता है, पर वीरवंशी-पूत की मंसलौटी-चमरौटी में मामूली-सी वातों की ही चोटों से काली-धौली नदियों की महटिया-लहरों को मात करता रण-वाँकुरा रक्त उछाल मारने लगता है, कि—"एहो, मेरे प्यारे वुवू टुन महर ! तुम्हारी सौ वर्षों की वृद्ध काया हजार वर्षों तक सुखियारी रह जाए, कि तुमने मुझ वफौलवंशी की सोई ग्रात्मा को जगा दिया है, कि मेरा कर्त्तव्य मुझे सुझा दिया है !···एहो, मेरे वुवू टुन महर जी, तुम्हारे वरदानी वचनों को गाँठ वाँधता हूँ, कि मैं ग्रव ग्राज ही ग्रपनी पितर-थात वफौलीकोट की धरती की धूलि का ग्रभिषेकी-टीका ग्रपने माथे पर लगाने को प्रस्थान करूँगा, कि तुम ग्राज से ग्रपनी महरपट्टी में काँसे के पनौटे की चिलम को सुख से गुड़गुड़ाना !···ग्रौर मेरे वालक-स्वभाव के कारण जो-कुछ भी परेशानियाँ उठानी पड़ी हैं, उनके लिए भूल-चूक की माफी देना, कि लाख उत्पाती था, मगर ग्रापकी ही गोदी मे खेला वालक हुग्रा, सो ग्रापके ग्राशीर्वाद का ग्रधिकारी हूँ !·· मेरे प्रणाम लो, हो मेरे महर वुवू, कि ग्रव मैं तुम्हारे चरन छूने तभी ग्राऊँगा, जव ग्रपने पितरों का वैर चुकाऊँगा !"

ग्रहा रे, वंश ग्रटारी पर वलता दीपक-जैसा ग्रजित वफौल हिंसालू-घाटी को प्रस्थानमुखी हो गया, कि सच्चे सपूत पितरों की ग्रान-वान के लिए ग्रपना सर्वस्व होम देते हैं, कि कायर-कपूत उनका नाम वेचते हैं, ग्रपना पेट पालते हैं ग्रौर चौरंस्ते के डोली कुत्तों-जैसे मर जाते हैं, कि—सच्चे सपूत का नाम ग्राता है, तो होंठों पर लाख की वोली '[illegible] वीरधर्मी !' ग्राती है, कि कायर-कपूत के नाम पर थूक की गोली [illegible] रह जाती है !

34

श्मशान-जाते बुड्ढे की विपरीत-बुद्धि

द, रे !

तुझ अन्यायी टुन महर की चिलम के काँस्य-पनौटे में डेढ़इंची-छेद
पड़ जाए, कि जिस चमरिया-चिलम में तमाखू गुड़गुड़ाते-गुड़गुड़ाते तुझ
सत्यानाशी बुड्ढे की बुद्धि ऐसी विपरीत हो गई, कि वफौलवंशी-बाल
'एहो, मेरे महर बुबू !' कहकर, प्रणाम सौंप गया, तो उसे पितरों
मुख की शोभा को बढ़ाने और बालकों की कुसुम-काया को सुखी बन
वाला आशीर्वाद 'दीर्घजीवी हो, वफौलवंशी बेटे !' कहाँ से देगा,
श्मशान-घाट के कफन-चोरों की जैसी कुटिल मुस्कुराहट अपने हड़
होठों पर ले आया, कि—ठहर, रे वफौलवंशी बमकुवापूत !
चरन छूने को क्या लौटेगा अब इस महरपट्टी में, कि तेरी दाड़ि
जैसी खटाई बनवाने का बन्दोबस्त अभी करता हूँ !

और—द, रे ! तुझ वुड्ढे की चिता जव चिनी जाए, तो उसमें लगाई गई लकड़ियों को आग नहीं पकड़े, कि तेरी खाली किए हुए कुथलों-(वोरों) जैसी चिमड़िया-काया चील-कौवों के हाथ पड़ जाए, कि तेरे श्राद्ध के पिण्डों के चावलों में लमपुछिया कीड़े पड़ जाएँ !—अन्यायी वुड्ढे ने महरपट्टी के सात कपूत चार चाण्डाल मल्लों के पास दौड़ा दिए, कि उनके हाथों कैसी कुआँखर-भरी पाती भेजी, कि—द, रे ! जव तू अन्यायी वुड्ढा मरे, तो सात दूत ऐसे ही महाराजा यम के दरवार में भी तेरे नाम की करम-पाती लेकर पहुँच जाएँ, कि 'एहो, धरमराज जी ! यह अन्यायी वुड्ढा आशीर्वाद के अधिकारी वालकों को कफन-चोरों की जैसी कुटिल गालियाँ देता था, कि नरक-लोक में इसकी चमड़ी को चून-चून दँतियाली-चिमटियों से नुचवाना !'

एहो, श्मशान-जाते वुड्ढे की विपरीत-वुद्धि से कैसे कुआँखर निकले, कि—"एहो, पंचनाम देवों के मंत्र-पुत्र चार भाई महामल्लो ! महरपट्टी के मुखिया दुन महर की जैराम जी की लेना, कि मैंने ये सात जोलिया महर तुम्हारी सेवा में भेजे हैं, कि इनकी दण्डवत लेना और मेरी इस पत्री के आँखरों पर ध्यान देना !···राजा कालीचन्द की वावन होरों की राज-सभा में अखाड़े वाजी करने में ही मत त्रिलमे रहना, कि आज तक निगरगंड रहे हो, मगर भविष्य के लिए चेतना !—कि, जिन वाईस भाई वफौलों ने तुम्हें गढ़ी चम्पावत के दिशा द्वारों का दरवान वनाया था, कि उन्हीं के वंश का रण-वाँकुरा वालक अजित वफौल आज हमारी महरपट्टी छोड़कर, वफौलीकोट की पितृ-भूमि को प्रस्थान कर गया है, कि 'वफौली कोट जाकर, अपने पितरों का वैर चुकाऊँगा !' चार भाई मल्लों को वावन होरों की राज-सभा से निकालकर गिरिखेत की मैदानी मिट्टी में खाड़ दवाऊँगा, कि ऊपर से चौंरिया-भौंरिया वैलों की जोड़ी जोतूँगा, कि चार भाई मल्लों के पर्वत-जैसे शरीरों का हाड़-माँस गिरिखेत के खेतों में खाद-मैल का काम देगा !'···सुनो हो, चार भाई मल्लो ! अभी तो वह वालक ही है, कि उसके पैर टिकाए से पथरौटे चरम

की मंसलौटी, कंधों की चमरौटी में गंगलोढ़े-जैसे लुढ़कते रहते हैं, कि उसकी पिण्डलियाँ वेलपट्टी के मुँगरिया केलों के खम्भों को मात करती है !···और, जिस दिन अपनी तरुणाई पर आ जाएगा वह वफौलवंशी-बेटा, तो फिर कहां तुम लोग उसके बल-विक्रम से पार पाओगे, कि बाईस वफौलों का एक वफौल तुम्हारा जनम-वैरी वफौलीकोट में पितर-थात सँभालने चला गया है, तो तुम्हारा वंश-बीज उजाड़ के ही सुख की नींद सोएगा, कि वफौलवंशियों की उग्र संकल्प के आँखरों को ही समर्पित रहती है !···सो, महरपट्टी के मुखिया दुन महर की पाती के ये आँखर ध्यान में धर लेना, कि लगती-आग, और बनते-दुश्मन को उसी समय नेस्त-नाबूद कर देना चाहिए, कि फिर भभकी हुई आग और बलवान बने शत्रु को वश में कर पाना बहुत कठिन होता है !····बाक़ी क्या लिखूँ, आप लोग खुद समझदार हैं !"

35

पितरों की थाती, पूत के पैर

टून महर के आँगन से लौटा अजित बफौल सीधे हिंसालू घाटी में सोई अपनी माँ लली दूधकेला के पास पहुँचा—"उठ, ओ माँ ! महरपट्टी के वनों में तूने मुझे बहुत खेल लगाया, अब मेरी पितृ-भूमि बफौली कोट को ले चल मुझे, कि मैं अपने पिताश्री बफौलों की सूनी थाती को फिर से संवारूँगा।···चल, ओ माँ ! मेरी रगों का बफौलवंशी-रक्त चौमास की काली गंगा की तरह छलार लोट लेता है, कि अब तो तब तक मैं सुख पलक नहीं लगाऊँगा, जब तक पितृघाती राजा कालीचन्द और उसकी रानी डोटियाली की एक चिता नहीं चिनूँगा, कि मेरे बफौल पिताश्री के हाथों दिशा-द्वारों के दरवान बने अत्याचारी मल्लों को मिट्टी में नहीं मिलाऊँगा !"

लली दूबकेला औचक अपने वफौलवंशी-पूत की तमतमाई मुखाकृति देखती ही रह गई, कि 'आज मेरे लाड़ले का आँचल-लगते समय का सोया-संकल्प किसने जगा दिया ? वन-वन भटकती रही, भाई-भाभियों के दुर्वचन सुनती रही, मगर वफौलीकोट को नहीं लौटी, कि कहीं डोटियाली रानी और मल्लों की कुदृष्टि न पड़ जाए मेरे अजित पर। मगर, आज न-जाने कौन वैरी जनम गया मेरा महरपट्टी में, कि मेरा दुधिया-पूत लाल अँगारा बना वफौलीकोट की दिशा पूछ रहा है !··· हे भगवान, जिन चार अन्यायी मल्लों ने सारी काली कुमाऊँ-पाली पछाऊँ के पहलवानों को चरणों का चाकर बना दिया है, उनसे मेरी गोदी का यह दुधमुँहा बालक क्या टक्कर लेगा, कि अभी भी जिसकी पलक बिना सिर में ठुँग मारे, बिना 'हिल्लुरी पोथी, हिल्लुरी, हिल्लुरी' कहे नहीं लगती !'

आज लली दूबकेला गात की दुबली, मन की मलीन पड़ गई, कि—"सुन हो, मेरे लाड़ले पूत ! अभी कुछ समय और तू मेरे साथ विकट-वनों में अपनी बालक-अवस्था बिताले, कि जिस दिन तेरी भुजाओं में तेरे पिताश्री वफौलों की लुवासार गुलेल के पटेल-प्रशस्त पलड़ों को खींचने की सामर्थ्य आ जाएगी, तो मैं तुझे स्वयं ही वफौलीकोट को ले चलूंगी। मगर, मेरे लाल, अभी इस लोरी सुनकर सोने, लाड़ से खिलाने पर ग्रास ग्रहण करने की कौंली उमर में वफौलीकोट की दिशा मत पूछ, कि बाईस सिर-छत्रों को खोकर प्राण दे रही थी, तो एक तूने ही आँचल से लगकर मुझको चिता-चढ़ने से रोका था, मेरे वफौलवंशी !"

"रोका तो था, माँ !" वफौलवंशी बेटा लली के और निकट पहुँच गया—"मगर, मैंने यह कब वचन दिया था, कि कायर-कपूत की तरह तेरे साथ वन-वन भटकता फिरूँगा और अपने पिताश्री के वैरियों के भय से अपनी पितर-थाती वफौलीकोट की दिशा नहीं जाऊँगा ? कब ऐसा वचन मैंने तुझे दिया था, माँ, कि मेरी वफौलीकोट की पितर-थाती उजड़ती रहेगी और मैं महरपट्टी के अन्यायी महरों का दिया हुआ

टुकड़ा खाकर, कुत्ते की तरह अपना पेट पालूँगा ?···मेरी लाड़ली माँ, मैंने तो तुझे वचन दिया था, कि जिस रानी डोटियाली के कारण तेरे सिर-छत्रों की छाया लोप हुई है, उसे तेरे चरणों की दासी बनाऊँगा, कि जिस अन्यायी राजा कालीचन्द ने मेरे निर्दोप, धैर्य-धरम के धनी पिताजनों को विश्वासघात करके मारा, उसको आधी दाढ़ी-मूँछों का मेहतर बनाकर गढ़ी चम्पावत नगरी की प्रदक्षिणा उससे करवाऊँगा, कि मेरा पितृघाती राजा कालीचन्द मनुष्य-योनि में आए हुए गधे की तरह बफौलों को सताने का दण्ड भोगेगा !·· और, मेरी मैयारी, जो पूत अपनी माता को दिए हुए वचनों को पूरा नहीं करता, उसका मुँह देखने से भी पातक लग जाता है, कि तू कैसे मेरा कायर-कलंकी मुँह देखती रहेगी ?"

ओहो रे, लली के लाड़ले पूत ने अपनी विशाल भुजाएँ अपनी माता के चरणों पर टेक दीं, कि—"मैया री, मुझे और दिशाओं को फेरकर अपने आँचल के अमृत और बफौलवंशी-रक्त को मत पानी से भी पतला होने दे, कि मेरे माथे पर अपना वरदानी हाथ धर, और आशीर्वाद दे, कि मैं तुझे दिए वचनों को पूरा करके सुख की पलक सो सकूँ !···अपने आँचल की छाया आज मेरे सिर पर इतनी घनी करदे, माँ, कि मैं तेरा ऋण उतारे बिना जिऊँ, तो कुत्ते की मौत मरूँ ! · और, माँ मेरी, ले चल मुझे मेरी पितर-थाती बफौलीकोट में, कि मेरा अजरगूँठ अश्व अपनी पीठ पर बैठने वाले कौवों को पूँछ से उड़ाता मेरी बाट जोह रहा होगा और लुवासार गुलेलों के पलड़ों के बारहबिसी के गोले कनमना रहे होंगे, कि कब कोई बफौलवंशी इस बफौली कोट में आएगा और हमको खेल लगाएगा !···मैया री, मेरे नाम पर रीते पड़े हुए बाईस पंचसेरा कटोरे अभी तक रीते ही पड़े होंगे, कि इनमें दूध भरने को बफौलवंशी सुमंगला लली मैया कब बफौलीकोट लौटेगी, कि तेरे हाथों की ताम्र-कलशियों की जल-धार पाने को आँगन की तुलसी बौरा रही होगी, और तेरे हाथों की तेल-बाती पाने को अटारी के बुझे हुए दीपक कनमना रहे होंगे, कि तेरी भरपूर भण्डारी हथेलियों का स्पर्श पाने को हमारी पितर-

थाती वफौलीकोट के वफौलखण्डों की पिटारियों में पड़ा वैभव विकल हो रहा होगा। तेरे पीसे हुए चावलों के मेरे हाथों से बाँटे जाने वाले श्राद्ध-पिण्डों को पाने के लिए हमारे पितर वफौलीकोट में भटक रहे होंगे, मेरी लली माँ, कि गोठ की गैया रभाती होगी, 'लली मैया कहाँ ? वफौल वंशी-वेटा कहाँ ?' पुकारती होगी और खेतों की रीती मिट्टी रोती होगी, तो 'लली मैया कहाँ, उसके हाथों की दातुली-कुटली का प्यार कहाँ ? वफौलवंशी कहाँ, उसके हाथों की हल की मूठ कहाँ ?' बिलखती होगी, और..."

...और आज हिसालू घाटी में, अपने पराक्रमी पूत के बाँके वचन सुनकर, लली दूधकेला का हिया हर्ष से हिलुरता है, कि आँचल की घनी छाया देने में, आँखों के असाढ़-मेघों को मात करने वाले ममता के बादल भी बरसाती है, कि 'मेरी उमर लेना, मेरे वफौलवंशी ! लाख बर[illegible] जीना और अपने पितरों का नाम उजागर करना, मेरे पूत, कि तेरा न[illegible] आने से मेरे आँचल का दूध भी धन्य-धन्य कहलाएगा !'

*

*

*

ओहो, रे !

आज पितर-थानी वफौलीकोट की धरती पर वफौलवंशी [illegible] पाँव पड़ गए, कि उजाड़ वफौल-खण्डों में दीपकों की कतार [illegible] संध्या-वेला, कि तुलसी-चौरे में हरियाली छा गई, और अपूजित-[illegible] पूजा के अक्षत मिल गए, धूप-गंध और नैवेद्य-प्रसादी मिल गई, [illegible] की गैया-मैया को घर की मालकिन के हाथों के गास [illegible] उनके सूखे थनों में दूध उतर आया !

और दूसरी ही भोर...

वन के पंछी चहके, उपवन में फूल महके,

कि, वफौल खण्डों के चिफल पथरौटिया[1]-पटाँगणों में वफौलवंशी-पूत पंचसेरा-कटोरों को रीता करता घूमने लगा, कि आठ [illegible] लुवासार गुलेल के चमड़पट्टों को तेल पिलाया, अजरगूंठ की [illegible] पीठ पर वफौलवंशी हाथ फेरने के बाद, बारह विसी के गुलेल-[illegible] खेल लगाने लगा।

झरोखों से झाँकती लली दूधकेला अपने महापराक्रमी [illegible] देख-देखकर, मुल-मुल मुस्कुराती रही, कि मेरे वाईस [illegible] एक आँचल-फूल है, कि बारहबिसी मनों के गंगलोड़िया [illegible] खेल लगा रहा है, कि इसके बल-विक्रम को मेरे आँचल [illegible] पितरों का पुण्य दाहिना हो जाए !

हरि, हे हरि !

राम, हे राम !

में समर्पित कर दिए, कि—"लाज रख लेना हो, कुल देवो ! मेरे पूत की लुवासार गुलेल से छूटी वफौल-ढुंगी को अपने वश की वावन वयारों की संगति देना, कि वफौल-ढुंगी गढ़ी चम्पावत की नगर-सीमा से इधर न गिरे, कि मैं अपने इष्ट-पितरों के नाम पर पर्वों को न्यौतूंगी, विप्रजनों को अन्न-वस्त्र बांटूंगी।"

⊛

36

बिना मेघों का वज्र-पात, चांडालों का चमारपना

सत्, रे सत् !

सत् रह जाए वफौलीकोट की धरती-पार्वती का और वफौलों की वंश-परिपाटी का, कि जिसमें जनमे पराक्रमी-पूत के हाथों की लुवासार गुलेल का बारह विसी का गोसा कहाँ आकर गिरा, कि बावन होरों की राज-सभा के पार्श्ववर्त्ती मल्लखेत में, कि मल्लों के भस्मासुरी भोजन का अठमनिया चावल-तौला और चौमनिया दाल-कसेरा, दोनों पाताल-लोक में धँस गए, कि अखाड़े में कुश्ती खेलते, राजरानियों से ठिठोली करते चार भाई मल्लों के आकाश को उछलते भुजदण्ड धरती की ओर झूल गए, कि—गगन में मेघ नहीं दिखाई देते, मगर यह राजा इन्द्र का जैसा

वज्र कहाँ से छूटा ?

ओ हो, रे ! आज चारों चाण्डालों की बावन-हथिया मोटी कमरों में धचक-जैसी पड़ गई, कि आज हम चार भाई मल्लों की रसोई में यह बिना बादलों का वज्र कैसे गिर गया ?

"क्यों, रे राजा कालीचन्द ?"—उत्तरिया मल्ल ने राजा कालीचन्द की चुटिया पकड़ डाली।

"क्यों, रे बुड्ढे दीवान जोशी ?"—दक्षिणी मल्ल ने जोशी विज्ञानचन्द्र को अखाड़े में औंधा कर दिया, कि पूर्विया-पश्चिमिया मल्ल सरदार-सेनापतियों को दमोरने-पीटने लगे, कि—"बताओ, रे ससुरो ! आज तुम्हारी चम्पावत गद्दी में ऐसा चमत्कार क्या हुआ है, कि जो हम चार भाई मल्लों की रसोई पाताल चली गई ?"

राजा कालीचन्द रहती पाणी का गूंगा हो गया, कि सरदार-सेनापति ग्वाल-बालों की तरह टिटियाने लगे, कि—"एहो, हमारे स्वा... मल्लो ! हमारे प्राण क्यों लेते हो, कि ऐसा चमत्कार तो हमने भी आ... बारह बरसों के बाद देखा है, कि बहुत पहले जब बाईस भाई ब... थे, तो..."

अहा रे, बुद्धि-विद्या के भण्डारी दीवान जोशी की आँखों ... चमक चपला-जैसी कौंध गई, कि उन्होंने सैनों से सरदार-सेनापति... बरज दिया और दक्षिणी मल्ल की ओर आँख उठाकर, बोले—... हो पराक्रमी मल्लो ! बात पूछते हो, तो पहले प्राण अपनी ठौर ... कि मुझे जरा मल्लखेत की अपनी रसोई तक ले चलो, कि लक्ष... तब चमत्कार की जड़ बताऊँगा !"

जोशी दीवान को साथ ले, चार भाई मल्ल आगे ... अपनी पाताल-पहुँची रसोई का स्वाद याद करते हुए, ... बता, रे बुड्ढे ! बता, कि हमारी रसोई के तौले-कसेरे ... धँस गए ?"

जोशी विज्ञानचन्द्र मल्लखेत की धँसी हुई धरती का ...

गए। धँसी हुई धरती की परिक्रमा पूरी करते-करते, जोशी विज्ञानचन्द्र के होंठों पर एक तोला-भर हँसी हिलुर उठी, कि उनकी आँखों से एक अंजलि-भर आँसू बिखर गए।···कि, वफौलढुंगी को मल्लखेत में गिराने वाला कोई वफौलवंशी ही हो सकता है !···कि, हो, न हो—बाईस भाई वफौलों का वंश-बीज सहेजे लली दूधकेला ही, गाँव-वन भटकती, आज वफौलीकोट लौट आई होगी और बाईस वफौलों के एक वफौल ने ही लुवासार गुलेल के पलड़ों का खींचा होगा, कि बाईस भाई वफौलों का गुलेल-गोसा तो सिर्फ नगर-सीमा तक ही पहुँचता है मगर उसका गुलेल-गोसा मल्लखेत तक पहुँचा है !···· शायद, काली कुमाऊँ, पाली पछाऊँ की प्रजा और गढ़ी चम्पावत की बावन होरों की राज-सभा के अदिन अब पूरे हो गए हैं, कि वफौलीकोट में वफौलवंशी लौट आया है।

वज्र कहाँ से छूटा ?

ओ हो, रे ! आज चारों चाण्डालों की बावन-हथिया मोटी कमरों में धचक-जैसी पड़ गई, कि आज हम चार भाई मल्लों की रसोई में यह बिना बादलों का वज्र कैसे गिर गया ?

"क्यों, रे राजा कालीचन्द ?"—उत्तरिया मल्ल ने राजा कालीचन्द की चुटिया पकड़ डाली।

"क्यों, रे बुड्ढे दीवान जोशी ?"—दक्षिणी मल्ल ने जोशी विज्ञानचन्द्र को अखाड़े में औंधा कर दिया, कि पूर्विया-पश्चिमिया मल्ल सरदार-सेनापतियों को दमोरने-पीटने लगे, कि—"बताओ, रे ससुरो ! आज तुम्हारी चम्पावत गढ़ी में ऐसा चमत्कार क्या हुआ है, कि जो हम चार भाई मल्लों की रसोई पाताल चली गई ?"

राजा कालीचन्द रहती पाणी का गूंगा हो गया, कि सरदार सेनापति ग्वाल-वालों की तरह टिटियाने लगे, कि—"एहो, हमारे स्वा

पूरे प्राण क्यों लेते हो, कि ऐसा चमत्कार तो हमने भी आ क्रियां ज्ञाद देखा है, कि बहुत आगे पहले जब बाईस भाई ... संताप की ... की अ... दरबारी-दीवान बनाएँगे, कि तेरा आखिर... जाएगा !"

* * *

'हाँ कहूँ, तो हरसिंह के हाथ कटते हैं, ना कहूँ, तो न... जाती है !'[1] वाली कहावत आज जोशी दीवान के साम...

1. एक लोक-कथा यों है, कि हरसिंह और नरसिंह दो ...

जोशी विरा...

डाकू सरदार भी एक ही काइयाँ था। बोला—"बुढ़िया तू भी सही बात ही कह रही है। मगर मैंने भी झूठ बात नहीं कही। अब तू ही फैसला कर, कि किसने हल्दी रचाई है, तेरे हरसिंह ने, या मैंने ? जो तेरे बेटे हरसिंह ने रचाई है, तो मैं उसके हाथ काट दूंगा, कि उसने अपनी भाभी का धर्म खण्डित किया और तेरी बहू को छोड़ जाऊंगा। ...नहीं तो, अगर मैंने ही हल्दी रचाई है, तो मैं इसे अपने साथ ले जाऊंगा ! बोल, किसने रचाई हल्दी ? हरसिंह ने ?"

डलवाया है !···

* * *

और···

जोशी विज्ञानचन्द्र, राज-सभा की ड्योढ़ियाँ लाँघकर, अपने महल की ओर बढ़े ही थे, कि महरपट्टी के सात जोलिया महर दिखाई पड़ गए।

"क्यों, हो महरपट्टी के महरो ! आज यों गिरते-पड़ते कहाँ को जा रहे हो ?"—जोशी विज्ञानचन्द्र ने पूछा, तो सातों जोलिया महर और वेग से बावन हारों की सभा की ओर बढ़ने लगे। जोशी दीवान का मन आशंकित हो गया। उन्होंने गोपनकण्ठी-सीटी बजाई, ड्योढ़ियों के सरदार सचेत कर दिए, कि सातों जोलिया महर हाथों में हथकड़ियाँ, पाँवों में बेड़ियाँ बँधवाए, भय से थरथराते, जोशी विज्ञानचन्द्र के ही पीछे-पीछे जोशी-खण्ड में पहुँच गए, कि महरपट्टी के मुखिया टुन महर की प्रपंच-पाती जोशी दीवान के हाथ पड़ गई !

37

धरम-माता की भिक्षा, दीवान जोशी की दक्षिणा

एहो, कथा के ठाकुरो !

उत्तराखण्ड की यात्रा के यात्री कैलाश मानसरोवर के दर्शन करने जाते हैं, कि हिमाल-स्वामी शंकर की सेवा में शीश झुकाते हैं। अपना लोक-परलोक सुधारते-सँवारते हैं। भक्ति की भावना फलती है—कैलाश-यात्रियों के पाप क्षीण, पुण्य उजागर होते हैं।

कि, कैलाश-मानसरोवर को इसी उत्तराखण्ड के कई पंथों की यात्रा जाती है। कहीं वागेश्वर घाट, पिंडारी को पिंगलेश्वर शंकर की [illegible] मिलती है, कि कहीं टनकपुर-रामेश्वरघाट में घाटशम्भू की थात [illegible] है, कि कहीं थीलद्योना-थल-धारचूला की लीक में शक्तेश्वर-[illegible]

शंकर की यात्रा चलती है, कि कहीं वाड़ेछीना-पनुवानौला के पंथ में वृद्ध नागेश्वर, बाल नागेश्वर की चौकी मिलती है, कि इस उत्तराखण्ड की देवलोकी-वसुन्धरा में पंथ-पंथ-ठौर-ठौर, हाट-हाट-घाट-घाट में हिमाल-स्वामी शंकर के हजारों रूपों के अवतारी-आसन पाए जाते हैं! ऐसे ही—वीर-कथा की अँखरौटी के भी अनेक आसन होते हैं, कि एक कथा-कैलाश के अन्तिम सरोवर तक पहुँचने के लिए कई अन्तर कथाओं का आधार लेना पड़ता है, कथा-कैलाश के यात्रियों को, कि उनकी राह के काँटे रमौलिया के चरणों में लग जाएँ, कि रमौलिया अपने शीश-फूलों को उनके चरणों में बिखेरता है! ..

कि, एहो कथा के कमलासनी-भँवरो!

गढ़ी चम्पावत की महारानी भद्रा ने अपने लाड़ले विमलचन्द के लिए राजसी-वेश छोड़ा, संन्यासी-चोला धारण किया था, कि गाँव-गाँ पट्टी-पट्टी का फेरा करती जागेश्वर-खण्ड में पहुँच गई थी।

अहा रे, भगवान् महाकाल शंकर के संहारकोटी-स्वरूपों के ठौर- आसन जहाँ लगे हैं, उस जागेश्वर-खण्ड की शोभा कैसी है, कि स देवदार-वृक्षों की पाँतों से वहाँ की धरा-धूल की परतें ढँकी हुई मि हैं और डाल-पातों की सघन छाया में जहाँ की धरती-पार्वती के गा हरी मखमल का लहरिया घाघरा मन मोहता है, कि शिला-खण रुद्राक्ष माला-जैसी पहने वहाँ मृत्युंजयी अलकनंदा की रजत-प धार बहती है, कि जिसकी वैतरणी-तारिणी गोदी में नर-नारि वृद्धावस्था में विश्राम करते हैं, अधमचोलों से मुक्ति पाते हैं!" ..

एहो, हिमाल-स्वामी की जागेश्वर-खण्ड में चार अविनाशी लगी हुई हैं, कि पहली चौकी पूर्व दिशा में कोटेश्वर शंकर दूसरी चौकी पश्चिम में दण्डेश्वर शंकर की और तीसरी च में वृद्ध नागेश्वर की है, कि चौथी चौकी दक्षिण में शंकर की!

—कि, ऐसे पावन तीर्थ-स्थल जागेश्वर-नागेश्वर शंक

घाट में उत्तराखण्ड के तेंतीस कोटि देवता-देवियों का आना-जाना लगा रहता है, कि जहाँ के श्मशान-घाटों की राख हरिद्वार कनखल के तीर्थों की विभूति को मात करती है !

एहो, ऐसे तीर्थों के महातीर्थ नागेश्वर-जागेश्वर में महारानी भद्रा अलकनंदा-भागीरथी में स्नान-ध्यान करती थी और मृत्युंजयी-विभूति रमाती थी, कि चौंसठ तीर्थों का पुण्य एक ठौर बटोरती थी, कि—प्रणाम लो मेरे, अविनाशी-अवधूत स्वामी, कि अपने औघड़दानी हाथों से एक भिक्षा मुझ अभागिनी को भी देना, कि मेरे सिर-छत्र महाराज कालीचंद, आँचल-पूत विमलचंद की रक्षा करना, कि काली कुमाऊँ, पाली पछाऊँ की प्रजा के अदिन टालना, सुदिन देना, हो हिमाल-स्वामी !

अहा रे, आज साँझ की वेला का दीपक जलाकर, महारानी भद्रा ने अविनाशी शंकर के सहस्रनामों की रुद्राक्ष-माला फिराई ही थी, कि रुद्राक्ष-कण्ठी के वरदानी दाने आपस में टकराने लग गए, कि वफौली-कोट की वयार जागेश्वरखण्ड में डोलने लगी थी, कि वफौलीकोट में वफौलवंशी-वेटा लुवासार गुलेल के पलड़ों को खींचने लग गया है, कि अपने पितरों का वैर चुकाऊँगा !

महारानी भद्रा का हिया कम्पायमान हो गया, कि वफौल वाईस भाइयों के वैरी कौन, कि एक रानी रुपाली, एक राजा कालीचन्द !···

और वंश-वेलि का एक कुसुम कुँवर विमलचन्द, कि वाईस वफौलों के वीर-वंश में जो भी वाँकुरा जनमा होगा, अपने पितृ-द्रोहियों का वंश उजाड़ करने की ही हठ वाँधेगा, कि वफौलवंशियों के संकल्पाक्षर कभी विफल नहीं हुआ करते !

···और भाग की महारानी, गात की संन्यासिनी वनी वफौलीकोट को चरणधारिणी वन गई, कि ज्योत्स्ना की ज्योति का आधार लेती चल-चलाचली की यात्रा तय करने लग गई, कि ऐसी सुमंगला-संन्यासिनी

सतवंती की यशोगाथा रमौलिया अपनी सतघरिया-सरस्वती[1] से क्या बखाने, कि जो पलक ढाँपते-उघारते पितर-पूतों को सुखियारी पाना चाहती है !

चरण बढ़ते हैं, कि पंथ छोटा होता जाता है, कि, रात बीतती वेला रमौलिया की वाणी भी आगे बढ़ती जाती है, कथा के छंद छोटे पड़ते जाते हैं और रात-भोर-भर की दुकौलिया यात्रा रमौलिया चार आँखरों में पूरी कर देता है, कि जागेश्वर खण्ड से- चली मैया महारानी भद्रा, भोर की वेला बफौलीकोट की वीर-प्रसविनी घरती-पार्वती के आँचल में पहुँच गई और बफौलों के आँगन में कमण्ड[illegible] का जल छिड़कने, संन्यासी-चिमटा बजाने लग गई—"ओ, री माई[illegible] तेरे पितर-पूतों को परमेश्वर दाहिने होंगे, कि भिक्षा दे !·· कि, ते[illegible] अटारी-पिटारी का वैभव बढ़ेगा, भिक्षा दे !··· कि, तेरी गोठ की [illegible] बछिया, तेरे घर की वह बेटा देगी, कि भिक्षा दे !"

भिक्षांदेहि, भिक्षांदेहि, भिक्षांदेहि !

अहा रे, भरपूर भण्डारिणी लली दूधकेला के कानों में भिक्षा [illegible] बोल गूंजे थे, कि आँचल-भर वासमती लेकर, देली पर पहुँची-[illegible] माई ! चार अक्षतों की यह भिक्षा ग्रहण करो, कि आज मेरा [illegible] वंशी युद्ध-यात्रा पर जाने वाला है, उसे आशीर्वाद दो, कि वे[illegible] बने, बेर घर लौटे !··· कि, जब मेरा पूत पितरों का ऋण[illegible] सुखियारी देह लेकर, मेरे पास लौटेगा, तो मैं तुम्हें दूध-वासम[illegible] लगाऊँगी, माई, कि इस वेला यह अक्षतों की भिक्षा ग्रहण क[illegible] एक पूत से पूत वाली हूँ मैं और मेरी एक आँख की उजिया[illegible] की हरियाली है, कि उसे अपने सत्-धरम की विभूति दो[illegible] तुम्हारी चरण-सेवा करूँगी !"

1. चूँकि कथा-गायक रमौलिया अनेकों घरों में कथ[illegible] है, इसलिए वह अपनी सरस्वती (जिह्वा) को सतघरिय[illegible]

कुँवर कहाँ पार पाएगा ?

"अल्लख ! सुखी संसार, भरपूर भण्डार रहे तेरा, दाता माई !" —जोगन-टेर टेरने लगीं महारानी भद्रा, कि—"अल्लख, अविनाशी शंकर के नाम की, कि कोटेश्वर-पिंगलेश्वर, शक्तेश्वर, भूमेश्वर-नागेश्वर-विश्वेश्वर, के मृत्युंजयी-घाटों के स्वामी के नामों की !··· अल्लख, सत्गुरु गोरखनाथ, सतगुरु महेश्वरनाथ के नाम की, कि जिन गुरुओं ने इस जोमन-जट्टी को वाल-काल में ही संन्यासिनी वनाया, कि दीक्षा देकर, भिक्षा माँगने को खरुआ की झोली कन्धे पर डाल दी ! सुन हो, माई, कि सड़कों की संन्यासिनी को महलों की महारानी क्यों समझती है ? नीचे झुकी थी, तो तेरे आँचल के चावलों ने विखरना ही था।···सच मान, माई, मैं श्मशान-घाटों की शंकर-पंथ की संन्यासिनी हूँ, कि मैं आज वफौलीकोट यह सुनकर ही आई थी, कि धरम के धनी वफौलों का वंशधारी पूत यहाँ आ गया है, तो आज उसके हाथों की भिक्षा लेके आऊँगी, कि वफौलवंशी-पूत विजयी वनेगा, गढ़ी चम्पावत नगरी की विपदा हरेगा। चार चाण्डाल मल्लों की चौकड़ी वहाँ से हटाएगा, कि माई रे, वुलादे अपने पूत को, कि मैं उसी के हाथों से भिक्षा ग्रहण करूँगी !···"

अहा रे, लली दूधकेला कुतरुक्क किलक उठी, कि—"माई हो, तुम्हें तुम्हारे चरणों-विखरे अक्षतों की ही शपथ सौंपती हूँ, कि झूठ क्यों वोलती हो ? माई हो, वुरा न मानना, कि जब तुमको गुरु गोरखनाथ ने वाल-काल में ही शंकरपंथी-संन्यासिनी वना दिया था, तो यह राजकुँवर-जैसा लाल कैसे तुमसे जनमा ?···कि, माई हो, असत् की संतान के कपाल में कोयले की छाप पाई जाती है, कि यह तो तुम्हारा सत्-धरम का पाला-पोसा कुँवर है, सो इसका मुँह देखे से चन्दवंशी राजाओं का स्वरूप याद आता है, कि मेरी माताश्री कहती थीं, कि चंदवंशी राजाओं के कपाल में शंख की छाप पाई जाती है !"

महारानी भद्रा अटपटा गई, कि कभी लली दूधकेला का, कभ

अपने कुँवर का मुँह देखने लगी, कि जो भेद मैंने इस कुँवर को भी नहीं वताया, आज वही खोलना पड़ गया है, कि एक तो अन्न-दानों की शपथ लग गई है, दूसरे ललीं दूधकेला की आँखों को धोखा देना कठिन है !...

कि, महलों की महारानी अपना भेद खोलने से पहले लली दूधकेला के पाँव पकड़ने को आगे बढ़ी—कि, चरण पकड़ूँगी, लली से अपने लाड़ले पूत की रक्षा के लिए वचन माँगूंगी !—मगर, लली दूधकेला ने अपने आँचल से लगा लिया, तो महारानी भद्रा के मुँह से ममता-भरे बोल निकल पड़े—"लली तू, अब मेरी लाज तेरे हाथ है, वहिना !...मैं और कोई नहीं, लली गढ़ी चम्पावत नगरी की अभागिन रानी भद्रावती हूँ, जिसे तेरे स्वामी वाईस भाई वफौल पद से राजमाता, प्यार से छोटी वहन-जैसी मानते थे।..."

लली दूधकेला ने महारानी भद्रा को और गाढ़े आलिंगन में कस लिया—'एहो, मैया महारानी ! आप आई हैं, तो मुझ अभागिन का आँगन सफल हो गया है, कि जिन दिनों यहाँ सुखी थे, मेरे स्वामी वफौल आपका नाम लेते थे, आदर से शीश झुकाते थे, कि 'हमारी मैया महारानी भाग से लक्ष्मी, स्वरूप से पार्वती और वाणी से सरस्वती को मात करती हैं !'...मैं तो आँचल के अक्षतों के विखरते ही भरमा गई थी, कि हो-न-हो आप चन्दवंश की राजरानी हैं, कि न-जाने संन्यासिनी का वेश क्यों धरा है ? फिर चन्दवंशी कुँवर को देखा, तो मन का भरम विश्वास में वदलने लगा। फिर जव गढ़ी चम्पावत नगरी की विपदा वखानते आपकी आँखों में मोती ढुल-ढुला आए, तो महरपट्टी में सुनी-सुनाई वातें याद आने लगीं। वहाँ सुजन कहा करते थे—जव से मैया महारानी भद्रावती गढ़ी चम्पावत नगरी छोड़ गईं, तभी से काली कुमाऊँ-पाली पछाऊँ के ग्रह-नक्षत्र भी अनिष्टकारी वन गए। धरती-पार्वती के प्रहरी वाईस भाई वफौल भी नहीं रहे, तो चार चाण्डाल मल्लों का सत्यानाशी-आसन गढ़ी चम्पावत की वावन होरों की राज-सभा में लगा हुआ है !... सुनो हो, मैया महारानी, कि

मैं चरण पूजने वाली हूँ आपके, कि आपका कुंवर भी मेरे लिए अजित बेटा ही है।··· मगर, मेरा वफौलवंशी-बालक बल-विक्रम का ही बाँका नहीं, बल्कि स्वभाव का भी हठी है, कि अपने मुख से निकले वचनों से पीछे नहीं फिरता !··· कि, ओछे वचनों के लिए क्षमा करना, हो महारानी दी !··· मेरे बावले बालक अजित वफौल ने क्या संकल्प कर रखा है, कि अपने पितर वफौलों के घात का बंदला लेके ही सुख की पलक लगाऊँगा, कि चन्दवंश का बीज-उजाड़ करूँगा !··· हरि, हे हरि ! चन्दवंश के इस राजकुँवर का मोहिल मुखड़ा देखे से ही मेरे आँचल में ममता की हिलोर उठती है, कि इसके अदिन मेरे आँचल पड़ जाएँ !··· अच्छा, महारानी दी !··· मैं आपको भिक्षा क्या दूंगी, कि यह सारा वैभव ही आपका दिया हुआ है, कि जो-कुछ चाहो, इस घर की मालकिन की तरह ले जाओ, कि भविष्य में भी अपना भेद न खोलना।··· अजरगूंठ को पानी पिलाकर, मेरा वफौलवंशी लौट ही रहा होगा···"

"उसे लौटने दे, लली !"—महारानी भद्रा बैठने को आसन ढूंढने लगीं—"लली रे, मेरा यह कुंवर भी रणबांकुरे स्वभाव का है, कि अभी बालक-सा है, तो आँचल से ढाँपकर रखती हूँ, इसकी योद्धा-वृत्ति को जागने नहीं देती हूँ।··· तो इसे कब तक छिपाए रहूँगी मैं ? मेरे आँचल की छाया छूटते ही यह अपना कुल-गोत्र दिखाने लगेगा, कि तेरे वफौल-वंशी-बालक से कब तक मैं इसकी रक्षा कर पाऊँगी ?··· सो, आने दे अजित बेटे को, कि मैं उनके आगे आँचल फैलाऊँगी, स्वामी और पूत के प्राणों की भिक्षा माँगूंगी, कि जब वफौलवंशी वचन दे चुकेगा, तभी अपना भेद खोलूंगी !"

महारानी को चंदन-चौकी का ऊँचा आसन देते हुए, लली दूबकेला सुख की हँसी हँसने लगी—"महारानी दी, मेरे स्वामी सच ही कहते थे, कि हमारी मैया महारानी विद्या-वाणी में सरस्वती को मात करती हैं !' और मैं अपने स्वामियों के सत्य-वचनों का सुख प्रत्यक्ष भोग रही हूँ, कि इस उपाय से मेरा बालक अवश्य चन्दवंश को कल्याणकारी

बन जाएगा, कि वह भी अपने पिताजनों की तरह शरीर से हिमाल, स्वभाव से पराल है, रानी दी !…"

* * *

अहा रे, कोस-दूर था, कि वफोलवंशी के अजरगूंठ अश्व की टाप सुनाई देने लगी। लली दूधकेला ने आने का संकेत किया, आँगन में उतर आई।

आँगन के पथरौटों पर अपनी पग-तलियों की छाप उतारता अजित बफोल लली के पास पहुँचा ही था, कि लली दूधकेला बोली—"लाल मेरे, देख ऊपर और प्रणाम सौंप, कि चन्दन-चौकी में महारानी…हरि, हे हरि ! संन्यासिनी माई बैठी हुई हैं, कि उनके आँचल से लगा राजकुँवर…बाल-संन्यासी एक बैठा हुआ है।… सुन, वफोलवंशी, कि जा, उनके चरण छू और उनको मुँह-माँगी भिक्षा दे, कि आज तू अपनी विजय-यात्रा पर जाने वाला है, तो धरम-माता के आशीर्वाद तेरे पंथ के विघ्न दूर करेंगे !"

लली का आज्ञाकारी पूत आगे बढ़ा, कि जुगल-हाथ चरणों पर धरे—"प्रणाम लो, हो संन्यासिनी माई ! बोलो, क्या भिक्षा लोगी, कि मेरी मैया के आदेश का पालन करूँगा मैं, कि आपको मुँह-माँगी भिक्षा दूँगा !"

महारानी भद्रावती ने आशीर्वाद दिया, कि 'जुग-जुग जीना, मेरे वफोलवंशी बेटे !'… और वचन माँगने लगीं, कि बिना वचनों की मुँहमाँगी-भिक्षा फलती नहीं है !

"एक वचन !… संन्यासिनी माई !… माँगो, मुँह-माँगी भिक्षा !"

"तीन वचन दे, मेरे दानी वफोलवंशी ! सत्य वचन त्रिकाल-वचन ही होते हैं, कि एक वचन, दो वचन, तीन वचन !"—महारानी भद्रावती ने आग्रह किया

"नहीं, संन्यासिनी माई ! एक वचन, सिर्फ एक ही वचन दे सकता हूँ मैं, कि वफीलवंशियों में तीन वचन देने की परम्परा नहीं चलती, कि उनका दिया हुआ एक ही वचन बहुत होता है !"—वफीलवंशी अजित मुस्कुराने लगा।

"तो, मेरे दानी पूत !··· मैं तुझसे आँचल पसारकर भिक्षा माँगती हूँ, कि तू मेरे स्वामी और मेरे पूत के प्राणों की रक्षा ही करेगा, उनको वैरी नहीं बनेगा !"—महारानी भद्रा ने आँचल पसार दिया।

"ओरी, बावली-भोली संन्यासिनी माई ! ऐसी भिक्षा क्यों माँगती हो ?"— अजित वफौल किलककर, हँसने लगा—'माई हो, भला मैं आपके स्वामी-पूत के प्राणों को वैरी क्यों बनूँगा, कि आपके स्वामी-पूत से मेरा क्या वैर हो सकता है ? ·· मेरे वैरी तो गढ़ी चम्पावत नगरी में रहते हैं, कि आज उन्हीं का वंश-नाश करने को मैंने प्रस्थान करना है !··· अच्छा, आपके स्वामी और पूत के प्राणों की रक्षा का वचन तो मैंने दिया ही, कि जब उन पर विपदा पड़ेगी, तो पहले मेरे ही प्राणों पर बीतेगी !··· और अब आप कुछ और भी भिक्षा माँगें, कि आपको सन्तुष्ट देखकर, मेरी मैया भी सुखियारी बनेगी, कि उसने आपको मेरी धरम-माता बताया है !"

"बस, मेरे वफौलवंशी बेटे, तेरी दी हुई इतनी-ही भिक्षा के लिए तेरी यह अभागिनी माता जन्म-जन्मान्तरों तक ऋणी रहेगी, कि, लाल मेरे !···"—महारानी भद्रा ने हाथ जोड़ दिए—"यह तेरी संन्यासिनी धरम-माता, और कोई नहीं, गढ़ी चम्पावत की अभागिनी रानी भद्रावती और यह तेरा धरम-भाई राजकुंवर विमलचन्द ··"

हरि, हे हरि !

महारानी भद्रा के वचन सुनने थे, कि अजित वफौल की भृकुटियाँ बाँकी हो गईं, केशरी-काया क्रोध से काँपने लग गई—अर-र-र-र-र···

मगर, वफौलवंशी का एक वचन ही अटूट होता है, कि पल-भर में ही शान्त हो गया अजित वफौल और महारानी के जुड़े हुए हाथों को

अपना शीश छुआने लगा—"मैया महारानी, जनम-माता को जो वचन दिया था, कि चन्दवंश का नाश करूँगा, वह वचन आज मैं धरम-माता से हार गया हूँ, कि पितर-घात की ज्वाला जो मेरे तन-मन को विना आग का जलाती है, उसे झेलूँगा, मगर धरम-माता को दी हुई भिक्षा का अपमान नहीं करूँगा, कि आपके स्वामी-पूत के प्राणों का वैरी नहीं वनूँगा !"

"धन्य हो, मेरे वफौलवंशी !"—महारानी भद्रा गद्‌गद् हो उठीं, कि लली दूँधकेला ने धरती पर झुके हुए अजित वफौल के गज-चौड़े ललाट पर अपने अनार-फाँक अधरों की ममता रख दी—"लाख वरस की उमर पाना, मेरे लाल, कि तेरे मुख के वचनों से मेरे आँचल का दूध धन्य-धन्य होता है।"

*　　　　*　　　　*

गढ़ी चम्पावत से चले जोशी दीवान, तो राह-पड़ती ठौरों पर विजेसारी वजंत्रियों वाले ढोलियों, तेलकूट नगाड़ों वाले चोपदारों और रणसिंह तूर्यों के वादक तूर्यवाजों को संदेश देते चले, कि—सुनो रे, वजंत्रीवाजो ! आज मैं वफौलीकोट जा रहा हूँ, कि वारह वर्षों के अदिन टालने को वफौलवंशी को न्यौतूंगा, सो आज तुम लोग भी अपने साज-वाज न्यौतना। नगाड़ों को तेल पिलाना, ढोल-दमुवों के ढीले डोरे कसना, तूर्यों को उर्ध्वमुखी वनाना, और पिठाँ-अक्षत से अपनी-अपनी वजंत्री को पूजना, कि वफौलवंशी जिस राह चले, वहीं से उसे रण-निनाद सुनाई पड़े, कि उसका वफौलवंशी रक्त में शुक्ल-पक्ष की रातों के समुन्दर-ज्वार उठेंगे, तो चार भाई मल्लों को मारेगा, काली कुमाऊँ, पाली पछाऊँ की धरती-पार्वती का अनिष्ट दूर करेगा।···मगर, खवरदार, जव तक मैं वफौलीकोट से लौट के, महाकाल का सूर्यमुखी-शंख नहीं फूंकूं, तव तक मौन वैठे रहना, कि मल्लों के कानों में भनक पड़ेगी,

तो तुम लोगों को वैरी वन जाएँगे, कि ग्राज से उन्होंने गढ़ी चम्पावत नगरी की प्रजा के लिए घर से वाहर निकलने का दण्ड प्राणघात रख दिया है !…"

जोशी विज्ञानचन्द्र ग्रागे वढ़ते जाते हैं, कि पीठ के पुठ्ने में सूर्यमुखी शंख रखा हुग्रा है । वफौलवंशी को न्यौतते ही शंख फूंक दूंगा, कि राजा न सही दीवान तो हूँ ही गढ़ी चम्पावत का, सो राजवंशी-शंख फूंकने का ग्रंशाधिकारी मैं भी हूँ, कि वारह वर्षों से मौन पड़े इस शंख को ग्राज की सुवेला में गुंजायमान करना ही होगा !

एहो, कल्पना-जैसी करते जाते हैं, जोशी दीवान—महारानी भद्रावती की स्मृति गहरी होती जाती है, कि कैसे सुमंगला वहू इस सूर्यमुखी-शंख को गुंजारती थी, कि हिया मुग्ध, गात पुलकायमान होता था !

ग्रौर सोच-विचार के रेशों की रस्सी-जैसी वाँटते चले जा रहे हैं, जोशी दीवान, कि न-जाने वफौलवंशी कैसा होगा ? वल-विक्रम का तो ग्रपने पितरों से भी वाँका है, कि स्वभाव-स्वरूप का भी उन्हीं-जैसा उदार-मोहिल नहीं हुग्रा तो राजा कालीचन्द ग्रौर रूपाली रानी को भी दण्ड दिए विना मानेगा नहीं, कि वाईस भाई वफौलों के घात का वदला चुकाएगा !…

ग्राते-ग्राते वफौलीकोट में जव पहुँचे, जोशी विज्ञानचन्द्र, तो देखते क्या हैं, कि ग्राज लली दूधकेला के ग्राँगन में पर्व-जैसा जुड़ा हुग्रा है । महारानी भद्रा का संन्यासिनी का वेश उतार रही है लली दूधकेला, महारानी का रूप दे रही है, कि कुँवर विमलचन्द का संन्यासी-चोला उतार रहा है, दूर से ही 'मैं हूँ वफौलवंशी !' की पहचान देने वाला ग्रजित वफौल, कि राजकुँवर का राजसी रूप दे रहा है !…

महारानी को तो पहचान ही गए जोशी दीवान, ज्ञान-ग्रनुमान कुँवर विमलचन्द का भी लगाने ही लग गए, कि स्वरूप तो चन्दवंशियों का ही है !

महारानी भद्रावती ने जोशी दीवान को [illegible]
ी दौड़ीं, चरणों पर झुक गईं—"जोशी दा !"

"भद्रो वेटी…"—महारानी के सिर पर [illegible] आशीर्वादी अँगुलियाँ प्यार के आवेग से थरथराने लगीं, कि [illegible] आँसू नितर आए !… राजकुँवर विमलचन्द को [illegible] 'आयुष्मान भवः' कह, लली दूधकेला का भी प्रणाम ले चुके, तो [illegible] वफौल की ओर वढ़ गए जोशी दीवान।

* * *

और जव वफौलवंशी अजित ने चरण छुए, जोशी दीवान के, तो जोशी दीवान धीर-गम्भीर कंठ से वोले—"सदा विजयी होना, मेरे वफौलवंशी ! —कि, एक तेरे चरण छुए से मुझे वाईस प्रणामों की गरिमा मिल रही है, कि तू अपने पितर वफौलों का नाम उजागर करना !… सुन, बफौलवंशी ! मैं गढ़ी चम्पावत का दीवान वाद में हूँ, जात का ब्राह्मण पहले हूँ, कि जव तेरे पिताजन मेरे चरण छुआ करते थे, तो मुंह-माँगी दक्षिणा मुझे देते थे, कि वोल, तू क्या देता है ?"

"मैं भी मुंह-माँगी दक्षिणा ही दूंगा, दीवान दादा, कि मेरे लिए पूज्य पितर भी जव आपके चरण छूते थे, तो मैं वालक हूँ। आप आदेश देकर दक्षिणा ग्रहण करें, कि मैं वफौलवंशी एक वचन देता हूँ !"

"मैं जानता हूँ, मेरे वेटे, कि वफौलवंशी एक—सिर्फ एक ही वचन दिया करते हैं !"—जोशी दीवान गद्गद् कंठ से वोले—"सुन, मेरे वफौलवंशी ! चटुली रानी रुपाली के प्रपंच-जाल फैले थे, कि चन्दवंशी राजा उसका चाकर वन गया था। कुमाऊँ-खण्ड के दुर्दिन आने थे, सो तेरे पिताजन नहीं रहे, कि जो कुमाऊँ-खण्ड की धरती-पार्वती के पराक्रमी प्रहरी थे। जव तक उनके वल-विक्रम की कल्याणकारी छाया हम लोगों के सिरों पर थी, तो किसी की कानी आँख हम पर नहीं पड़ी थी,

कि राज-प्रजा सभी सुख के दिन बताते थे, मंगल-पर्व मनाते थे !··· मगर, जब से बाईस भाई बफौलों के बल-विक्रम का आसरा टूट गया, बफौलवंशी !··· हरि, हे हरि ! उस दिन का यह आज का दिन है। राजा-प्रजा सभी के प्राणों पर ऐसी बुरी बीत रही है, कि जिस गढ़ी चम्पावत नगरी में नर-नारी नाचते-कूदते, उत्सव-जैसा मनाते चलते थे—आज उसी गढ़ी चम्पावत नगरी के प्रजाजनों के लिए दिशा जाने को बाहर निकलना कठिन हो गया है !··· मेरे बफौलवंशी, जिन चार चाण्डाल मल्लों को तेरे पिताजनों ने गढ़ी चम्पावत के द्वारों का दरवान बना रखा था, आज उन्हीं चार चाण्डाल मल्लों का अन्यायी राज ऐसा चल रहा है, कि प्रजा को कौन पूछे, कि चन्दवंशी राजा आधा हुड़ा हुआ, उनकी चाकरी बजाता है, कि मल्ल चाण्डाल कुश्ती खेलते हैं, तो तेल-मालिश करता है !··· और, सुन मेरे बफौलवंशी !··· जो राज-रानियां सोने की पालकियों पर निकलती थीं, तो जन-जन की 'जै महारानी मैया, रानी मैया !' पाती थीं, आज उन्हीं की दशा धोबन-कुम्हारनों से भी गई बीती है। मल्ल चाण्डालों की चरण-सेविका बनी हुई हैं, कि चँवर गाई की पूंछ का चँवर झुलाती हैं, कि मल्ल उन्हें हाट की हुड़क्यानियों की तरह छेड़ते हैं !··· ध्यान में धर, मेरे बफौलवंशी, कि आज बारह वर्षों की वनवासिनी-जैसी धरती-पार्वती की दशा क्या है। उसके आँचल के पूत चाण्डाल मल्लों को चार मनों का कलेवा, आठ मनों का भोजन देते-देते स्वयं भूखों मरने लग गए हैं, कि अठारह गजों के टोपे, बावन गजों के चोले देते-देते, उन्होंने अपने घर की नारियों के घाघरे-पिछौड़े भी मल्लों की पर्वतकाया पर कफन-जैसे डाल दिए हैं, कि सतवंती मां-बहनों को अपनी लाज ढँकनी कठिन हो गई है ! ·· तो, मेरे बफौलवंशी !··· दक्षिणा दे मुझे, कि पितर-घात का बैर बिसर जाएगा, धरती-पार्वती के आंसू पोंछेगा तू, कि राजा कालीचन्द को क्षमा करेगा, चाण्डाल मल्लों का अन्यायी आसन हटाएगा तू ! यह गात झूला, बाल-फूला बूढ़ा ब्राह्मण तुझसे दक्षिणा मांगता है···"

जैसे सोंटों के आघातों से चाम्रपुड़ी वाला ताम्राधारी तेलकूट नगाड़ा और अधिक गूंजता है, कि जैसे तपाया सोना और अधिक पीला रंग देता है, कि जैसे आँच लगने से बारूद का गोला और विस्फोटक बन जाता है—

अहारे, जोशी दीवान के विह्वल वचनों की टीस से ऐसे ही आज वीरधर्मा बफौलवंशी की बाँहों में बल-विक्रम की तरंगें उठने लगीं, कि उस वीर बालक की छाती का घेरा छत्तीसगजी बनने लग गया, कि आज तो जवानों के लिए भी छत्तीसइंची-छाती ही बहुत बड़ी समझी जाती है !···

कि, एहो मेरी कथा के सुनने वालो !

आज अब वह वीरवंशी रक्त-बोटी कहाँ, कि जिसमें चौमसिया काली-गंगा की महटिया लहरों-जैसी हिलोरें उठती थीं, कि तब सतजुग का समय था, तो पूत पितरों पर उतरते थे, कि आज के पितर ही दान-धरम के नाम पर 'हायतोबा-हायतोबा, मिट्टी उठ जाए, मगर मुट्ठी नहीं खुले !' करके प्राण छोड़ते हैं, कि जहाँ सत्-धरम नहीं होता है, वहाँ बल-विक्रम कैसे हो सकता है ! तब की भण्डारिणी माता बड़ी बहू को आँचल-भर बासमती देकर भिक्षा देने को देली पर भेजती थी, कि अब की बुढ़िया सासों के जितने झोल गात में, उससे दूने आत्मा में पड़े हुए होते हैं, सो सबसे छोटी बहू को भिक्षा देने भेजती हैं, कि छोटी मुट्ठी में चावल के दाने कम-कम जाएँगे !···कि, जिस कलजुग में मूठ-भर चावल देते घर की घरिणी की छाती कसमसाती है, उस कलियुग में क्या पितर होंगे और क्या उनके पूत होंगे, कि बल-विक्रम के नाम पर घर की जोरू का गुस्सा देखकर ही पालतू कुत्ते-जैसे थरथराते हैं !···कि, आज के पापी समय में घर के पितर-पूतों का बल-विक्रम तो रीता ही, साथ ही, गोठ के बैलों के जूड़े भी कमजोर पड़ गए हैं !····कि, जो बैल हल-भर धरती जोतते में जूड़ा मटकाते चलते थे, आज हल कंधे पर धरते ही गौला बनने लगते हैं, घुटने टेक देते हैं !···

एहो, मेरी कथा के ठाकुरो !

ऐसे पापी-दुर्लभ समय में अपने कथा-स्वामी बाईस भाई बफौलों का नाम लेता हूँ, धन्य-धन्य कहता हूँ, कि जिनका बल-विक्रम का बाँका बफौलवंशी-पूत क्या हुंकार भरने लगा, कि—"एहो, दीवान दादा! धरम-माता भद्रादेवी को दी हुई भिक्षा, आपको दी हुई दक्षिणा के वचन एक-वचन की शपथ लेता हूँ, कि धरम-माता और धरती-पार्वती के नाम पर जनम-वेला से सँग लगाया हुआ वैर विसर जाऊँगा !...और, शपथ लेता हूँ मैं बफौलवंशी, कि जिस धरती-माटी के ललाट-तिलक को मेरे पितर बफौल राजा-महाराजाओं के स्वर्ण-मुकुटों से अधिक महान् मानते थे, उस धरती-पार्वती की विपदा दूर करने को प्राणों की दक्षिणा दूँगा, कि कुमाऊँ-खण्ड के राजा-प्रजा के वैरी चार भाई मल्लों के लिए सूरज का गोला, जलता शोला बन जाऊँगा, कि आँखें फोड़ने को गिद्ध, रक्त पीने को व्याघ्र बन जाऊँगा !"

38
वीर-कथा के अन्तिम छन्द

ए हो, वीर-कथा के वचन-लोभी ठाकुरो !

चन्द्रमुखी रात्रि-वेला का अन्तिम आसन लगने लग गया है, कि पूर्विया-खण्ड की उदयाचल-चोटी में उजियाली का घघरिया-घेरा पड़ने लग गया है, कि बँसवाड़ी की सीव के ऊँचे आकाश में विहान-तारा बाल-संन्यासी के जैसे निर्मल आसन में बैठ गया है, कि पूर्व दिशा उदयमुखी होने लग गई है !

सुनो हो, गुसाँई ठाकुरो, कि पूस-माघ के महीनों में पुरुषों के हाथ का काम-काज अधिक नहीं होता है, दिन-चढ़े तक कथा सुनके भी उदयाचल-सूर्य के अस्ताचल जाने तक गरम तोशकों से मुँह ढँकते हैं, निंदियाली बयार का विश्राम भोगते हैं !···मगर, चाहे सावन-भादों के होले-गीले, गोड़ने-गिराने के महीने हों, कि पूस-माघ के काम-काज के सजीले, आँचल के निर्मले महीने—घर की सुमंगला घरिणी को तो घर-

गृहस्थी के कमर चसकाकरके मन को संतोष, आँखों को सुख देने वाले काम-काजों को अपनी चाम की कुसुमिया, काम की कठीली हथेलियाँ लगानी ही पड़ती हैं, कि घर की लक्ष्मी पूसी उसका गात सुरसुराती है, 'म्याऊँ, दूध खाऊँ !' कहती है !···कि, गोदी का सुमन-कंठी-बालक उसका आँचल टटोलता है, 'माँ, दूध खाँ !' कहता है और सजीली सेज में लटपटी-लोट लेने लगता है !···कि, पोथिलों को चारा खिलाने के लिए अन्न-दाने बटोरने को घोंसले को चिड़िया उड़ती है, तो चिड़िया मयेड़ी के जैसे ही पंख घरिणी की आँखों की नींद को भी फूट जाते हैं, कि पूत-पूसी के नामों के दूध-कटोरे भरने को गोठ जाती है। काजरी-गाजरी गाई दुहती है, कि बिनुवा-चनुवा बछड़ों को टुकड़े खिलाती है, चौथा थन पिलाती है, कि बेर बढ़ना, रे छौनो, हल को कंधा देना !

एहो, अब रमौलिया भी वीर-कथा के अंतिम-छंदों के आसन खोलता है, कि चन्द्रमुखी-रात्रि का अंतिम छंद खुलते ही पूत-पूसी दूध-कटोरे माँगेंगे, कि अगर कथा पूरी नहीं हुई, तो घरिणी गैया कैसे दुहेगी ? ·· कि, रमौलिया क्यों विहान-वेला में पूत-पूसी के दूधिया-कंठों के उलाहने झेले ?

* * *

अहारे, अहा !

आज वफौलीकोट की वीरगढ़ी से बल-विक्रम का बाँका, वचनों का धनी और भावों का भण्डारी अजित वफौल गढ़ी चम्पावत के लिए प्रस्थान करने लगा, कि अपना वीर-वेश सँवारने लगा। गंगाजली-चोला पहना, कि दूधिया-सुरियाल पहनी, कि रेशमी फेटा अपनी वज्र-कठोर कमर पर बाँधा वफौलवंशी ने ! अपनों को प्यारी, दुश्मनों को भारी उसकी बाँहों में अठहथिया-घेरों के बाजूबन्द लग गए, कि लहरीले-पुट्ठों पर गेंडाचाम की चन्द्रमुखी ढाल लटक गई और मखमली-म्यान में दुधारी

तलवार, कि हाथ में दलजीत खाँडा सँवर गया, कि जब वफौलवंशी बेटे के सिर पर लली दूधकेला ने पुतलिया-पाग बाँधी, तो वफौलवंशी के भँवरीले-कंधों में पुतलिया-पाग के तुर्रे से भी ऊँची रक्त-डोरियाँ उठने लगीं, कि—

मेरे वफौलवंशी,

तेरा रण-बाँकुरा रक्त दुश्मनों को सत्यानाशी, अपनों को कल्याणकारी बन जाए, कि तेरे वीरवंशी-स्वरूप पर आज दीठ क्या पड़ती है, पिनालू के तिरछे पातों पर पड़ी जल-बूंद-सी ठहर ही नहीं पाती है, कि तेरी सूरजमुखी-देह देखते ही, आँखों का काजल कम लगने लगता है !

एहो, वीरवंशी वफौल ने संग्रामकोटी-बाना धारण किया और जननी-जन्मभूमि के चरणों की मिट्टी का ललाट-तिलक लेने लग गया, कि जब तक धरती-मैया की चरण-धूल के आशीप-फूल शीश पर नहीं चढ़ते, तब तक बल-विक्रम के नक्षत्र भी ऊँचे नहीं हो पाते हैं !

वीरप्रसूताललो दूधकेला का गात गद्गदा गया, हिया हिलुरने लगा, कि—विजयी हो, मेरे वफौलवंशी !

वीरगढ़ी वफौलीकोट की धरती-माटी ममता से मुरमुराने लगी, कि—मेरी उमर लेना, रे वफौलवंशी !

—कि, एहो कथा के सुनने वालो !

धरती-माटी ने अपनी उमर सौंपी थी, कि अजित वफौल अमर हुआ था, कि धरमशिला में बोलों का बन्दी आज भी वह वफौलवंशी अमर ही है, कि लगते-कलियुग में धरमशिला में ठौर ली थी, आते सतयुग में फिर वीरगढ़ी की माटी जोतेगा !

धरम-माता के चरण छुए, जोशी दीवान के चरण छुए, कि कुंवर विमलचन्द को बाँहों में भरकर, वफौलवंशी दुधैली-हँसी हँसने लगा— "राजकुँवर भाई, अब तू सूर्यमुखी-शंख को गुंजायमान कर, कि मैं अपने पितरों का रणकोटी तेलकूट नगाड़ा धधकाता हूँ !"

●

37

रणकोटी नगाड़े के ऊँची-उठान, नीची-बिठान के बोल—

बजन्त्री, सत् के बोल बोलना !

कि, सवा-सवा मन के सौंटे हाथों में लेके जब बफौलवंशी बफौल-चौंतरे पर धरे ताम्राधारी चाम्रपुड़ी के ततैया तेलकूट नगाड़े पर ऊँची-उठान, नीची-बिठान के बोल निकालने लगा, तो तीन लोक, चौदह भुवनों में रणकोटी-नगाड़े की प्रचण्ड ध्वनियाँ गूंजने लगी, कि गढ़ी चम्पावत्त में चार भाई मल्लों की कमर थरथराने लग गई !

राजा कालीचन्द की पलायमान् आत्मा में आनन्द की लहर उठ गई, कि—हे ईश्वर, आज मेरे कलंकी कानों को वीरगढ़ी बफौलीकोट के रणकोटी-नगाड़े की गूंज सुनने का सुख किस जन्म के पुण्य-प्रतापों से मिल रहा है ?

ाती पर चढ़ी चार चाण्डाल मल्लों की चौकी विसर गया राजा
न्द, कि रणकोटी नगाड़ा ऐसे तभी गूंजता है, जब कोई वफौलवंशी
को साधने के लिए संग्रामकोटी-बाना धारण करता है !…
हारे, आज गढ़ी चम्पावत नगरी के नर-नारियों के चाण्डाल मल्लों
से थरथराते कंठों से सुख की किलकारी-जैसी फूटने लगी—"है
आज वीरगढ़ी के वफौल-चौंतरे का रणकोटी नगाड़ा गूंजने
ा है, कि दूब की जड़-सा रहा हुआ कोई वफौलवंशी संग्राम-
ाना धारण कर चुका है, कि उसके बल-विक्रम को हमारे पुण्य
एँ !"

* * *

ही, उधर से वफौलवंशी अजित और चन्दवंशी विमलचन्द
के चरण बढ़े, कि इधर हाट-हाट-घाट-घाट के बजन्त्रीवाजों
ा बारह वर्षों के बाद अपनी बजन्त्रियों को गुन्जायमान किया,
वि-घरों के नर-नारी गढ़ी चम्पावत की ओर बढ़ने लग गए !
र्षों के बाद उन्होंने अपने सिरों को कंघी लगाई थी, कि लटी में
लगाया था, कि इंगूर-सिन्दूर के टीके, पिठाँ की लीक, अक्षतों के
ह लगाए थे—कि, चार चाण्डाल मल्लों की आज्ञा से तब तक
को सिंगार करने का अधिकार नहीं था, जब तक कि राजा
न्द उनको टक्कर के पहलवान न दे !

ोर पहलवानों के नाम पर चाण्डाल मल्लों ने पडियारकोट के
ी जगती पडियार, चम्पावत के सालू-पालू गल्लेदारों के भी ककड़ी
चीरे बना दिए थे ! गिरिखेत में रहने को उन्हें ठौर दी गई
गर उसे छोड़कर, चम्पावत नगरी में आसन बैठ गए थे, कि
चम्पावत नगरी के चारों दिशा-द्वारों की दरबानी से बिना
ा की राजशाही पाई थी !…कि, कहाँ वे राखधारी-

जोगियों के मंत्रपूत मल्ल थे, कि कहाँ बावन होरों की राजसभा में राजरानियों से अपनी तेल-मालिश करवाते थे, कि जब नीच को ऊँचा आसन मिलता है, तो वह आकाश की ओर मुँह करके थूकने लगता है !

·· मगर, आज चार भाई मल्लों की चाण्डाल-चौकड़ी का चित्त भी चलायमान हो गया, कि 'अगर पंचनाम देवताओं को जोशी दीवान ला रहा होता, तो उनके चिमटों की ही छणक्क्-छणक्क् सुनाई पड़ती, कि ये युद्ध-पर्व के जैसे प्रचण्ड नाद चारों दिशाओं से फूट रहे हैं, तो ऐसा लग रहा है, जैसे हमारे चारों ओर बजन्त्रियों का घेरा पड़ रहा है !'

"क्यों, रे राजा कालीचन्द ?···हमने तुझसे क्या मल्ल-वचन कहे थे, कि जब तक हमारी टक्कर के योद्धा नहीं देगा, तब तक तेरे राज में सारे सिंगार, सारे शुभ पर्व वर्जित रहेंगे। आज ये नगाड़े-दमुवे कौन बजा रहे हैं, क्यों बजा रहे हैं, कि तेरे राज-पाट में तो बाजा-गाजा वर्जित करवा रखा था हमने ?"—चारों भाई मल्लों ने राजा कालीचन्द को धमकाना आरम्भ कर दिया।

"सुनो हो, चार भाई मल्लो !"—राजा कालीचन्द आज बारह वर्षों के बाद राजसी-कंठ से बोला, कि आज तक तिरजाट-कंठ से बोलता था।

"सुनो, रे चार भाई मल्लो !"—राजा कालीचन्द बोला—"अब जो बाजे-गाजे का लश्कर इधर को बढ़ रहा है, इसकी तो मैं कुछ नहीं जानता, कि क्या कौतुक रच रहे हैं आज पंचनाम देवता ·· मगर घड़ी-भर पहले जो रणकोटी-नगाड़ा गूँज रहा था, वह बाईस भाई बफौलों के बफौल-चौंतरे पर धरा हुआ उनका वीरवंशी-तेलकूट नगाड़ा है ! और जब बफौलवंशी युद्धपर्व न्यौतते हैं, तो पहले सवा-सवा मन के सानण-सोटों से उसी रणकूट नगाड़े पर नौबत जगाते हैं और संग्रामकोटी-बाना धारण करते हैं, कि—सुनो, रे चार भाई मल्लो !—आज अवश्य ही कोई बफौलवंशी-बाँकुरा गढ़ी चम्पावत के अदिन टालने को आ रहा है, कि तुम्हारी रसोई पर भी राजा इन्द्रदेव का वज्र नहीं गिरा था,

बफौलों की लुवासार-गुलेल का बारहविसी का गोसा ही गिरा था !"

ओहो रे, काले बादलों के बीच की उजली किरन-जैसी हँसी आज बारह वर्षों के बाद राजा कालीचन्द के अधरों पर फूटी, कि—"सुनो, हो चार भाई मल्लो ! मैं आज तक मरी हुई उमर जी रहा था, कि मेरे अन्याय की आग में बाईस भाई बफौलों का वंश-नाश हो गया था। तिरिया के चटुल-चरित्र के प्रपंच में मैं ऐसा तिरजाट बन गया था, कि धरम की बात बिसर गया, पाप के समुन्दर में डूब गया था !···मगर अब मर करके भी सुख पाऊँगा, कि मेरी आँखों के सामने मेरी प्रजा के प्राण हरे जाते थे, मगर मैं चोर के संगी-कुत्ते-जैसा तुम्हारे सामने बैठा रहता था !···आज बफौलवंशी कोई···कोई क्या, लली दूधकेला की दूर्वा-जड़ी अमर रह गई है, शायद—कि, बाईस भाई बफौलों का वंशधर ही गढ़ी में आ रहा है, कि वह अपना पितृऋण उतारने को मेरा वंश-नाश तो करेगा ही ··मगर, तुम्हारा अन्यायी-शासन भी उठाएगा ! मैं बफौलवंशी के चरणों पर हाथ रखूंगा, एक भिक्षा यह मागूंगा, कि वह मेरा वंश-उजाड़ करने से पहले एक बार तुम्हारा धूसा बनता दिखा दे, मेरी आँखों को, कि मैं अपनी प्रजा के प्राणों को पुलकित होते देखूंगा, तो सुख की मौत मरूँगा !"

हरि, हे हरि !

चारों चाण्डाल मल्ल क्या वचन बोलने लगे—"सुन, रे तिरजाट राजा कालीचन्द ! बहुत पिनक्कू की जैसी उछाल ऊपर को मत मार, कि आने दे तेरे बफौलवंशी-पैग को !···अरे, मूरख राजा ! बाईस बफौलों को मरे बारह वर्ष ही पूरे हुए हैं अभी तो ! क्या तो उनका बारह वर्षों की काँली उमर का बालक होगा और क्या वह हम चार भाई मल्लों से अकेला पार पाएगा, कि हम उसको चीरने में ककड़ी चीरने का समय भी नहीं लगाएँगे, कि—ठहर, ठहर, रे तिरजाट राजा कालीचन्द !—तेरा भुर्ता भी उसी की चटनी के साथ बनाएँ

40

बफौलवंशी-हलिया
और
बिना पूँछ के बैल

अहारे, जैसे-जैसे वफौलवंशी-वाँकुरे का अजरखूंठ अश्व गढ़ी के नगर-हाटों में पहुँचने लगा, तैसे-तैसे 'विजयी होना, हमारे वफौलवंशी, कि तुझे हमारे पुण्य लग जाएँ !' की जै-जैकार होने लगी, कि वफौल-वंशी-वाँकुरे के गढ़ी में आने की सूचना कुसुमगंधिला बयार-झोंकों के साथ फैलने लगी ।

वफौलवंशी-पूत के पाँव क्या पड़े गढ़ी के आँचल में, कि फगनौटी-ऋतु के बुरूँश-वन-सी फूलने लगी चम्पावत नगरी ! घड़ी-भर में ही पूरी चम्पावत नगरी में नर-नारियों का रेला-पेला लग गया, कि जिस गढ़ा चम्पावत के लोगों की चार भाई मल्लों के त्रास के कारण अपनी

को मल्ल-युद्ध को न्यौतता हूँ, कि कुश्ती कहाँ खेलोगे, गढ़ी चम्पावत के नगर-हाटों में, कि गिरिखेत के दोहलिया-खेतों[1] में !"

एहो, चार भाई मल्लों की आज सुदशा रूठ गई थी, मंगलपाती फट गई थी, कि वचन कैसे ओछे बोले—"सुन, रे वफौलवंशी छोरे ! जैसे आचमन-भर पानी के लिए छोटा सोता छोड़ के, वड़ी गंगा की ओर कोई नहीं जाता, ऐसे ही, तुझ कल के छोरे के लिए हम मल्ल-क्षेत्र क्या ढूँढेंगे ? सुन, रे छोरे ! तू गात का वहुत गुदगुदा, स्वरूप का वहुत सुन्दर है, कि तुझ पर हम चार भाई मल्लों को भी दया आ रही है। जा, रे छोरे ! इस राजा कालीचन्द कलुवा चाकर के कारण क्यों अपनी दुवैली-हँसी, रुपहली-काया का सत्यानाश करवाता है, कि इसी तिरजाट राजा कालीचन्द ने तेरे पिताजनों को विश्वासघात की मौत मारा था !—जा, वफौलवंशी ! एक वार तेरे पितर वफौलों ने हमें प्राण-दान दिया था, एक वार हम तुझे देते हैं, कि—जा, अपनी वफौलीकोट में गाय-वकरियाँ चराना, हल जोतना, कि जब सोलह श्राद्धों का पर्व आएगा, तो तू वाईस श्राद्ध करना !···इस कठुवा राजा कालीचन्द ने हमसे टक्कर लेने के लिए धौणीकोट के धौण, सौनडुंगर के सौन बुलाए, कि डोटीगढ़ी के घामी, वौराण के वौर वुलवाए, कि साल-पालू गल्लेदार और जगती पडियार पहलवान न्यौते और सबकी जड़ खुदवाके निर्वंश करवा दिया ! हम तो पंचनाम देवों के पंचपूत हैं, कि हमारे वल-विक्रम से पार कौन पा सकता है ? हमारी हुंकार सुनते ही, वड़े-वड़े योद्धाओं के कंधों की चमरौटी थरथराकर, कमर तक उतर जाती है !···जा, रे छोरे ! वंश में का एक नामलेवा-काठदेवा तू ही रह गया है, कि अपनी खैर मना, वफौलीकोट को लौट जा !"

एहो, कथा के सुनने वालो !

---

1. इतना बड़ा खेत, कि जिसे दो जोड़ी बैल एक पूरे दिन में जोत सकें।

वीरवंशी वालक अजित वफौल क्या सोचने लगा, कि मुँह से वखानने से रणवाँकुरा-रक्त अशुद्ध होता है, कि सच्चे योद्धा सदा 'लकड़गिडा सामने है, तो कुल्हाड़ी की धार औरों को क्या दिखानी ?' वाली कहावत को प्रत्यक्ष किया करते हैं।

अहारे, लहरीले-पुट्ठे चौड़े किए, भँवरीले-कंधों की मँसलौटी विजवार-सिगौड़ी[1]-जैसी ऊपर उठाई वफौलवंशी वाँकुरे ने, कि प्रलाप करते पूर्विया मल्ल से अपनी पिनालू[2]-पात-चौड़ी हथेली मिलाई, कि पूर्विया मल्ल विना माँ-वाप के लावारिश वालक-जैसा रोने लग गया, कि—एक हाथ तो वफौल-ढूंगी को पहले ही चढ़ चुका था, आज दूसरा हाथ भी गया !

पूर्विया मल्ल को रोते-रिरियाते देखा, तो वफौलवंशी वालक हँस पड़ा, कि—"सुनो, हो चार भाई मल्लो ! पितर-समान हो तुम लोग भी मेरे, कि वफौलीकोट में हल जोत खाने की सलाह देते हो ···एहो, अन्यायी पितरो !···आज पहले मैं तुम लोगों की ही हलजोत लगाऊँगा, कि तुम चार विना पूंछ के वैलों को गिरिखेत में जोतूंगा, कि तुम विना पूंछ के वैलों को हल जोतते देख-देखकर, हमारी वफौलीकोट के वैल हल की लीक ठीक से पकड़ना सीखेंगे !"

41

भोर की चार किरणें, रमौलिया के चार आँखर

एहो, कथा के ठाकुरो !

भोर की चार किरणें ही उजियाली फैलाती हैं। रमौलिया के चार आंखरों में कथा पूरी यों होती है, कि या कुश्ती चार भाई मल्लों ने पंचाचूली पर्वत की गुरुस्थली में ही खेली थी, कि वन के वानरों को फलों का खाना प्राणघाती बन गया था ! कि, या कुश्ती आज अजित बफौल ने ही उन्हें खिलाई, कि गढ़ी से ठोकते-पीटते गिरिखेत में पहुँचाया, कि चार बिना पूंछ के बैलों को हलजोत लगाना शुरू कर दिया, कि रमौलिया धन्य-धन्य कहता है, बफौलवंशी-ग्रांकुरे के पराक्रम को !

*　　　*

अहारे, अजित वफौल, कि वीरवंशी हलिया !

धिक्कार, धिक्कार, धिक्कार !

एहो, चार भाई मल्ल, कि विना पूंछ के बैल !

कथा के ठाकुरो हो, रमौलिया अपनी दो अंगुल-भर चौड़ी वाणी से कैसे वफौलवंशी-रणबाँकुरे का बल-विक्रम बखाने, कि गढ़ी चम्पावत नगरी से लेकर के गिरिखेत तक की मीलों चौड़ी धरती-माटी थरथरा गई, बयार-पाटी बौरा गई, कि मेरे वफौलवंशी-बाँकुरे के बल-विक्रम को देखकर, आँखों की ज्योति धन्य होती है, मगर मुख के बोल बिसर जाते हैं !

अहारे, जिन चार भाई मल्लों के पराक्रम से सारी काली कुमाऊँ, पाली पछाऊँ थरथराती थी, कि जिन मल्लों की ऊँची हाँक सुनकर के बड़े-बड़े योद्धाओं के कंधों की चमरौटी खिसककर कमर पर पहुँच जाती थी—आज उन्हीं चार भाई मल्लों को मेरा वफौलवंशी पूत गढ़ी चम्पावत से हाँकता-धपाता गिरिखेत तक ले गया, कि पूर्विया मल्ल को कंधा पकड़कर दाईं दिशा दिखाने लगा—पूर्विया मल्ल रे, होट, मेरे विना पूंछ के बैल !

अहारे, पश्चिमी मल्ल को बाईं दिशा दिखाने लगा—पश्चिमी मल्ल रे, पलट मेरे विना सींगों के बैल !

धि-रि-रि-रि-रि-

अहारे, आज मेरा वफौलवंशी रणबाँकुरा चार भाई मल्लों को चारों दिशाओं के भरपूर दर्शन कराने लग गया, कि चारों भाई मल्ल मुख से गाज, नाक से पानी बहाने लग गए, कि गलुवा बैलों-जैसे बीच गिरिखेत में लमलेट होने लग गए !

एहो, रणबाँकुरा अजित वफौल मुट्ठी-चोट क्या मारने लगा, कि चार भाई मल्लों के महामुण्डों की गुद्दी फूटकर ऐसे बाहर निकलने लगी, कि जैसे बड़ी जात की खुंडी भैंस के पाँव के नीचे दबने पर छोटी जात के भुरभुरिया मेंढक की गुद्दी बाहर निकलती है !

उत्तरी मल्ल, कि दक्षिणी मल्ल—
कि, राम-नाम सत्त है !
अ-र-र-र-र—
तीसरा भाई दक्षिणी मल्ल—
कि, सत्त बोलो, गत्त है !
एहो, कथा के ठाकुरो !

तीन तिकट, महा विकट मल्लों को वीरवंशी-वाँकुरे ने गिरिखेत के ही गहरे खड्डों में दवा दिया, कि चौथा भाई मल्ल हाथ जोड़ता, शीश नवाता वफौलवंशी की शरण आ गया—"शरण दे हो, वफौलवंशी वाँकुरे, कि एक वार शरण तुम्हारे पितरों ने दी थी, कि एक वार शरण पूत को भी देनी चाहिए ! सुन, हो वफौलवंशी ! शीश झुकाता हूँ, चरण पूजता हूँ तेरे, कि जैसा वाँका वल-विक्रम तेरा देखा है मैंने, ऐसा किसी ने तीन लोक, चौदह भुवनों में नहीं देखा होगा, कि मुझे प्राण-दान दे !··· मुझे प्राणदान दे, हो वफौलवंशी, कि मैं संन्यासी-चोला धारण करूँगा, चिमटा-कमण्डल पकड़ूँगा, कि तीर्थ-तीर्थ-घाट-घाट डोलूँगा और तेरे वल-विक्रम की वीर-गाथा के छंद चारों दिशाओं में फैलाऊँगा, मेरे वीरवंशी स्वामी !"

अहारे, वल-विक्रम के वाँकुरे वफौलवंशी ने मारण-मुट्ठी ऊपर ही रोक दी, दुधैली-हँसी विखेर दी, कि—जा, रे पूर्विया मल्ल, शरण देता हूँ, कि न देने से मेरे पितर मुझे प्यार नहीं करेंगे !·· कि, शरण में आए शत्रु को मारने से भी वीरवंशी वफौलों के वल-विक्रम को कलंक लगता है !

अहारे, मेरे वफौलवंशी !

अहारे, मेरे रणवाँकुरे !

अहारे, काली कुमाऊँ, पाली पछाऊँ की गैया-मैया के लाड़ले, कि अपने कथा-चाकर रमौलिया की दण्डवत स्वीकार कर ले, कि तेरी वीरगाथा के आँखरों से मेरी वाणी सुफल होती है, मेरे स्वामी !

42

मुख-सरोवर के हंस

सत्, रे सत् !

एहो, कथा के ठाकुरो !

सत् रह जाए वफौलीकोट की धरती-माटी, वंश-परिपाटी का, कि जिसमें रणवांकुरे अजित वफौल-जैसे सपूत ने जन्म लिया, कि बिना छत्र-मुकुट का राजकुंवर-जैसा सबको सुख पहुंचाने लगा !

एहो, मेरे कथा-रसिको !

वफौलवंशी रणवांकुरे ने चार चाण्डाल मल्लों को [illegible] काली कुमाऊँ, पाली पछाऊँ की धरती-पार्वती और [illegible] मिटाया। गढ़ी चम्पावत नगरी की [illegible] में जो मुकुटधारी राजा कालीचन्द बैठता था, [illegible] राजकुंवर को शीश नवाने लगा, कि—[illegible] मेरे [illegible] तेरे चरणों की धूल मेरे माथे का [illegible]

ा प्राणघाती हूँ मैं—मुझे मेरी पापी काया से मुक्ति दे, अपना पितर-ऋण उतार ले ! चार चाण्डाल मल्ल तूने साध दिए, कि मैंने अपनी आँखों की ज्योति सफल कर ली है, गढ़ी चम्पावत की राज-सभा से उनकी चाण्डाल-चौकी उखड़ती देख ली है !···कि, अपनी प्रजा को सुख पाते देख लिया है !···मेरी सारी इच्छाएँ तृप्त हो चुकी हैं। एक अतृप्ति निस्संतान रहने की थी, तो राजकुँवर विमलचन्द का मुख देख लिया है। मगर एक शूल-संताप बाईस भाई बफौलों के घात का रह गया है, कि उसे तू हटा दे, मेरे लाड़ले, कि तेरे हाथों से मुक्ति पाकर, मेरी पापिष्ठा देह भी पवित्र हो जाएगी !"

अहारे, लली दूधकेला देखती है, राजमाता भद्रा देखती हैं और दीवान जोशी विज्ञानचन्द्र देखते हैं, कि अपने ही चपल-चंचल-चदुल तिरिया-चरित्र की चिता में बिना आग की जलती, राख होती डोटियाली रानी रूपाली देखती है—कि, कहीं बफौलवंशी पूत को अपने पितरों के प्राणघात की सुधि बौरा न दे, कि कहीं वह धरम-माता को दिया हुआ वचन बिसर न जाए !

मगर, अहारे, वीरवंशी सपूत दिया हुआ एक वचन नहीं बिसरा, कि काया का कोमल, वाणी का मधुर बन गया—"सुनो हो, महाराज कालीचन्द ! जनम-माता लली को वचन दिया था, कि जिसने मेरे पितरों से विश्वासघात किया है, उसको बिना बीज-वंश का बनाऊँगा, पितर-ऋण से उबरूँगा !···मगर, धरम-माता को एक वचन हार चुका हूँ, कि उसके आँचल के पत, सिर के छत्र पर कोप-दृष्टि नहीं डालूँगा। ···सो, सुनो हो, महाराज कालीचन्द ! पितर-घात की बात भूलता हूँ, धरम-माता को दिए वचन की लाज रखता हूँ··· मगर आज से काली कुमाऊँ, पाली पछाऊँ की इस राजधानी के सुवर्णपीठ-सिंहासन पर राजकुमार विमलचन्द बैठेंगे, आप नहीं, कि इस गढ़ी चम्पावत नगरी की मैया महारानी भद्रादेवी होंगी, कि आपकी लाड़ली रानी रूपाली नहीं !"

अहारे, चपला-चंचला-चदुली रानी रूपाली गात की झिरझिरी,

वाणी की दीन वन करके आगे सरक आई, कि—सुन हो, वफौलवंशी वेटे, एक वचन मैं भी माँगती हूँ, कि मेरी भिक्षा नहीं टालना, लाड़ले, कि वीरवंशी-पूतों की वाणी कुआंखर 'ना' से अपवित्र होती है !···सुन हो, मेरे छौने, कि वाईस भाई वफौलों का सुख नहीं पा सकी थी, तो सत्यानाशिनी तिरिया वन गई थी !·· तू वफौलवंशी अगर मुझे 'माँ' कहकर पुकार ले, तो पिछला सारा दर्प-संताप विसर जाऊँगी और एक यह सुख अपने हिस्से लगा लूंगी, कि तू अकेली लली दूधकेला की कोख से नहीं, मेरी कोख से भी जनमा है !···कि, मेरे पूत, पाप के वचन क्षमा कर देना, कि मैं अपनी कोख से तुझ-जैसा ही पराक्रमी पूत पाने को ललकती थी, कि सिर्फ इसीलिए वाईस भाई वफौलों का सुख पाना चाहती थी !"

अहारे, वीरवंशी पूत मेरा अजित कुँवर रुपाली रानी को भी दाहिना हो गया, कि—माँ हो, 'छौना' कहकर पुकारने से नारी की वाणी का विष भी अमृत वन जाता है, कि तुमने मुझे माँ की ममता से पुकारा है, तो मैं भी तुम्हारे चरण छूता हूँ, कि एक धरम-माता मैया महारानी हैं, कि दूसरी धरम-माता तुम्हें भी मानता हूँ !

"धन्य हो, मेरे वफौलवंशी !"—महाराजा कालीचन्द शीश झुकाते हैं, जय वोलते हैं।

"धन्य हो, मेरे वफौलवंशी छौने !"—मैया महारानी हाथ उठाती हैं, शीश पूजती हैं।

"धन्य हो, हमारे वफौलवंशी लाड़ले !"—जोशी दीवान के साथ, गढ़ी चम्पावत नगरी की प्रजा जय-जयकार करती है।

सपूत को जनम देकर सुख पाने वाली लली दूधकेला का कंठ अघा गया है, वाणी गद्‌गद् हो गई है, कि आँखों से गंगाजल की धार टपकती है—जीते रहना, सुख पाना, मेरे वफौलवंशी लाल !

अहारे, जैसे गंगा मैया, जमुना मैया को जनम देने से हिमाल-पार्वती की शोभा वढ़ती है, ऐसे ही, आज आनन्द के आँसू वहाने से वीरमाता

लली दूधकेला शोभा पा रही है।

अहारे, लली का लाड़ला पूत, मेरी वीर-कथा का स्वामी वफौल-वंशी किलकता है, मैया की छाती से लगता है, कि एक आँख गंगा, एक आँख जमुना बहाने वाली वीरमाता लली दूधकेला विहँसती है, कि उदयमुखी-सूरज-किरन की जैसी उजास बिखेरती है।

कि, एहो कथा के लाड़लो !

हंस कोई दुर्लभ पंछी नहीं है, कि निर्मलजल के कमलकोषी सरोवरों में राजहंसों की पाँतों-की-पाँतें तैरा करती हैं !···मगर, सबसे ऊँची नस्ल के दुर्लभ राजहंस वीरमाता लली दूधकेला के मुख-सरोवर में ही पाए जाते हैं, कि जिनकी रजतवर्णा-पाँत से मोतियों की उजास भी धुँधली पड़ जाती है, कि जिनकी गाँठ-गाँठ से वीरवंशी सपूत जनमाने का सुख आँचल के अक्षतों-जैसा झाँकता है !

43

कि, तुम्हारे नाम का चन्द्रमुखी-दीपक—

सत्, रे सत् !

सत् रह जाए मेरे वफौलवंशी कुँवर अजित की वीरगाथा की अँखरौटी का, जिसके छंदों को अपने वाणी के वचन सौंपकर, रमौलिया अपना कुटुम्ब पालता है, और अपने कथा-ठाकुरों के कान पवित्र करता है—कि, वीर-गाथा की अँखरौटी सुनने से कानों का मैल छूँटता है, आँखों की ज्योति बढ़ती है !

सत्, रे सत् !

सत् रह जाए, इस घर की मैया-गैया और घर के स्वामी का, कि जिन्होंने वीरगाथा की सुवेला न्योती है, कि पंचनाम देवों की सेवा में चन्द्रमुखी-दीपक की ज्योति सौंपी है, कि इन्हें अजित कुंवर-जैसा हिया का हुलास, मन का मोद बढ़ाने वाला सपूत मिले !

सत्, रे सत् !

सत् रह जाए, पंचाचूली पर्वत की गुरुस्थली के राखधारी-खाकधारी कल्याणकारी पंचनाम देवों का, कि जो अपने चमत्कारी चिमटे बजाते हैं, हम नर-वानरों को चमत्कार दिखाते हैं, कि फूल-पाती, दीप-बाती की सेवा स्वीकारते हैं—गोठ की गैया, गोदी के बालक की उम्र बड़ी कर जाते हैं !···

कि, एहो पंचनाम देवो !

इस वीर-गाथा की वेला हम तुम्हारे नाम का चन्द्रमुखी-दीपक जलाते हैं, कि दाहिने हो जाना, हो पंच परमेश्वरो !

···कि, रमौलिया शीश झुकाता है, चरण पूजता है तुम्हारे, स्वामी !